अनर्थदण्ड क्या ?

प्रस्तुतकर्त्री
आर्यिका श्री 105 विज्ञानमती माता जी

प्रकाशक
धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
सागर (म. प्र.)

कृति	:	अनर्थदण्ड क्या ?
प्रस्तुतकर्त्री	:	आर्यिका श्री विज्ञानमती माता जी
सम्पादन	:	पं. चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर
संस्करण	:	द्वितीय, मई, 2010
आवृत्ति	:	2200 प्रतियाँ
लागत मूल्य	:	25/-
संकल्पना	:	निधि कम्प्यूटर्स, जोधपुर
सर्वाधिकार सुरक्षित	:	प्रकाशकाधीन
प्राप्ति स्थान	:	धर्मोदय साहित्य प्रकाशन सागर (म. प्र.) मो. 094249-51771
मुद्रक	:	विकास आफसेट, भोपाल

सम्पादकीय

जैनधर्म अहिंसा प्रधान है। लोक में सामान्यत: 'अहिंसा' से जो समझा जाता है इसका क्षेत्र उतना संकुचित नहीं है, अपितु बहुत व्यापक है और बाहर व भीतर तक प्रसरित है। बाहर में तो अपने मन, वाणी व शरीर के द्वारा जानबूझकर तथा असावधानी से भी, किसी भी प्राणी को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुँचाना और इसी भावना के अनुरूप अपने नित्य कर्म बहुत सावधानी पूर्वक करना अहिंसा है तथा अन्तरंग में रागद्वेष परिणामों से निवृत्त होकर साम्यभाव में स्थित होना अहिंसा है। बाह्य अहिंसा को व्यवहार और अन्तरंग को निश्चय कहते हैं।

यथार्थत: अन्तरंग में आंशिक समता आये बिना अहिंसा सम्भव नहीं, इस प्रकार इसके अतिव्यापक रूप में सत्य, अचौर्य, बृह्मचर्य, अपरिगृह आदि सभी सद्गुण समा जाते हैं। इसीलिए अहिंसा को परम धर्म कहा जाता है।

समस्तवृतसमूहानामहिंसा जननी मता।
खनिर्विश्वगुणानां च धरा धर्मतरो: परा।।

× × × × ×

परमाणो: परं नाल्पं न महद् गगनात्परम्।
यथा किञ्चित् तथा धर्मो नाहिंसालक्षणात्पर:।।

जल, स्थल, आकाश सर्वत्र ही क्षुद्र जीवों की विद्यमानता के कारण यदि बाह्य में पूर्ण अहिंसा का पालन सम्भव नहीं है पर यदि अन्तरंग में समता और बाह्य में पूरा-पूरा यत्नाचार रखने में प्रमाद न किया जाए तो बाह्य में जीवों के मरने पर भी साधक अहिंसक ही रहता है।

हिंसा चार प्रकार की बतलाई गई है - (१) जो हिंसा जानबूझ कर, संकल्प करके योजना बना कर की जाती है, वह **संकल्पी हिंसा** है। (२) किसी आततायी से अपनी, अपने परिवार और अपने आश्रितों की तथा अपने धन, धर्म, समाज और देश की रक्षा करते हुए जो हिंसा हो जाती है, वह **विरोधी हिंसा** है। (३) गृहस्थ जीवन में अनेक कार्यों को करते हुए जो हिंसा हो जाती है वह **आरम्भी हिंसा** है और (४) व्यापार, व्यवसाय, उद्योग, नौकरी में व जीविकोपार्जन के लिए किये जाने वाले अन्य कार्यों में जो हिंसा होती है उसे **उद्योगी हिंसा** कहते हैं।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि कोई भी अच्छा-बुरा कार्य नौ प्रकार से सम्पन्न किया जाता है – मन से, वचन से और काय से तथा स्वयं करके, दूसरों से कराके और कोई कर रहा हो तो उसकी अनुमोदना करके (३×३=९) इन नौ में से किसी एक प्रकार से भी कार्य करने पर हम उस कार्य के कर्त्ता होने के उत्तरदायित्व से तथा उसके अच्छे बुरे फल से बच नहीं सकते।

चार प्रकार की हिंसा में संकल्पी हिंसा जानबूझकर की जाती है और शेष तीन 'हो जाती हैं' हमारे प्रमाद, असावधानी और विवशता के कारण। साधु पूर्ण रूप से अहिंसा का पालन करते हैं और गृहस्थों के लिए संकल्पी हिंसा तो त्याज्य है ही, बाकी तीन प्रकार की हिंसा से भी उसे यथाशक्ति अपने आप को बचाना चाहिए। ऐसा नहीं समझना चाहिए कि इन तीन प्रकार की हिंसा से उसे पाप नहीं होता। पाप तो अवश्य होता है पर वह उस व्यक्ति के भावों के अनुरूप ही होता है। सावधानी पूर्वक कार्य करते हुए और हिंसा की स्थितियों-परिस्थितियों में यथासम्भव बचते हुए भी जो हिंसा हो जाती है उसका दोष कम लगता है।

यह तो हुई प्रयोजनभूत हिंसा की बात कि जिसके बिना जीवनयात्रा नहीं चल पाती पर हम जाने-अनजाने, न जाने कितने कारणों से अनावश्यक कार्यों को जिनसे किसी भी स्व-पर प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती - रात-दिन करते रहते हैं। आगम में इसे ही **अनर्थदण्ड** के नाम से कहा गया है –

१. **आभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थिकेभ्य: सपापयोगेभ्य:।**
विरमणमनर्थदण्डवृतं विदुर्वृतधराग्रण्य:।।७४।। र.क.श्रा.।
अर्थ - दिशाओं की मर्यादा के भीतर-भीतर प्रयोजनरहित पापों के कारणों से विरक्त होने को वृतधारियों में अगृगण्य पुरुष अनर्थदण्डवृत कहते हैं।

२. **असत्युपकारे पापादानहेतुरनर्थदण्ड:।।स.सि. ७/२१/३५९।।**
अर्थ - उपकार न होकर जो प्रवृत्ति केवल पाप का कारण है, वह अनर्थदण्ड है। **(रा.वा. ७/२१)**

३. **प्रयोजनं बिना पापादानहेत्वनर्थदण्ड:।।चा.सा. १६/४।।**
अर्थ - बिना ही प्रयोजन के जितने पाप लगते हों, उन्हें अनर्थदण्ड कहते

हैं।

४. कज्जं किं पि ण साहदि णिच्चं पावं करेदि जो अत्थो।
सो खलु हवदि अणत्थो पंच पयारो वि सो विविहो॥३४३॥

अर्थ - जिससे अपना कुछ प्रयोजन तो सधता नहीं केवल पाप बँधता है, उसे अनर्थ कहते हैं। वह पाँच प्रकार का विविध रूप वाला है।

पूज्य **आर्यिका १०५ श्री विज्ञानमती माताजी** ने इसी प्रवृत्ति का शास्त्रीय और व्यवहारिक अपेक्षाओं के सन्दर्भ में प्रस्तुत कृति में विस्तृत विवेचन किया है। पूज्य माताजी की तर्कपूर्ण शैली अति विश्वसनीय है जो हमें आत्मावलोकन हेतु प्रेरित करती है कि हम अपने जीवन में निरर्थक क्रियाओं के माध्यम से हिंसा करके अपनी आत्मा पर पापों का बोझ लाद रहे हैं और यदि सावधानी पूर्वक आचरण करें तो पाप भार से बचे रह सकते हैं।

हमारा अहिंसापरक आचरण केवल धर्म ही नहीं है अपितु जीने की शैली है, जीने की कला है जिससे हमें स्वयं भी सुख मिलता है और दूसरों को भी। अहिंसा परस्पर सहयोग तथा सह अस्तित्व को जन्म देती है। हिंसा प्रतिस्पर्धा और वैमनस्य की जननी है।

पाठक इस कृति का अध्ययन कर निश्चित ही अपनी जीवनचर्या में परिष्कार करेंगे, ऐसी आशा है।

मैं पूज्य माताजी के श्रीचरणों में सविनय वन्दामि निवेदन करता हूँ और अपेक्षा करता हूँ कि उनकी निश्छल लेखनी इसी तरह पाठकों का मार्गदर्शन करती रहे। संघस्थ सभी आर्यिका माताओं के श्री चरणों में सादर सविनय वन्दामि।

कम्प्यूटरीकरण हेतु **निधि कम्प्यूटर्स** के **डॉ. क्षेमंकर, जोधपुर** को धन्यवाद अर्पित करता हूँ।

सम्पादन-प्रस्तुतीकरण में रही भूलों के लिए सविनय क्षमाप्रार्थी हूँ।

डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी
'अविरल', ५४-५५ इन्द्रा विहार
न्यू पावर हाउस रोड, जोधपुर (राज.)

कृति के संदर्भ में....

ऋषि और कृषि की यह धरा जड़ रत्नों के साथ-साथ चेतन रत्नों से भी समृद्ध रही है। इसलिए इसे वसुन्धरा कहा जाता है। ऋषियों का मूल धर्म अहिंसा की पूर्णता है तो श्रावकों का धर्म भी क्रमश: अपने पद के अनुसार अहिंसा धर्म का पालन करना रहा है। अहिंसा के मसीहा आदिम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान के पुत्र सम्राट् भरत के देश भारत को अहिंसाधर्म के पालन- कर्त्ताओं के चरण सान्निध्य से ही सोने की चिड़िया कहा जाता है। इसी अहिंसक धरा के मेवाड़ प्रांत का **भिण्डर** नगर अपनी भौतिक सुख-समृद्धि के साथ-साथ धार्मिक सम्पदा से भी शोभायमान है। इस धर्मनगरी में सन् १९६३ में कुँवार शुक्ला पंचमी के दिन **श्रेष्ठी बालूलालजी** की धर्मपरायणा पत्नी **श्रीमती कमला देवी** की कुक्षि से द्वितीय कन्या के रूप में बालिका **लीला** ने जन्म लिया।

बचपन से ही जन्मदातृ माँ ने धार्मिक संस्कारों का अमृत घुट्टी के रूप में पिलाना शुरू कर दिया और उस घुट्टी को रस-रुधिर रूप में परिणत किया आचार्य शिवसागरजी महाराज के सान्निध्य और उपदेशों ने। उसी समय से बालिका लीला घर-बाहर के प्रत्येक कार्य को करते समय ध्यान रखती कि मैं किस प्रकार से कहाँ, कब, कैसे पापों से बच जाऊँ। वह देखती और विचार करती कि मैं घर का, दुकान का कौन-सा कार्य करूँ कि माँ की सहायता भी हो जाये और मैं अहिंसा धर्म का पालन भी कर लूँ। उदाहरणार्थ – सर्दी में एक कि.मी. दूर जाकर दूध लाना है या फिर घर में नल आ जाने पर पानी भरना है, कपड़े धोना है, दो कामों में से एक काम तो करना ही है। उस समय बालिका लीला सर्दी को सहन करते हुए एक कि.मी. पैदल जाकर दूध लाना पसंद करती क्योंकि उसमें हिंसा कम है। यदि घर में पानी भरेंगे, कपड़े धोयेंगे तो हिंसा अधिक होगी। इसी तरह और भी अनेकानेक कार्यों में ध्यान रखकर पापों से बचने का पुरुषार्थ करती रहती।

आचार्य शिवसागरजी महाराज के समागम से वह बीज अंकुरित होकर अपने विकास की तरफ उन्मुख होकर संतों का सामीप्य पाने को मार्ग का अन्वेषण करने लगा और 'जहाँ चाह वहाँ राह' वाली सूक्ति को चरितार्थ करते हुए ही उन्हें **आचार्यकल्प श्री १०८ विवेकसागरजी महाराज** का वर्षायोग अनायास ही मिल

गया। गुरुचरण कमल को पाते ही भ्रमर ने पराग पीना शुरू कर दिया या यों कहें कि वह नन्हा-सा पौधा योग्य द्रव्य क्षेत्र रूप सामग्री पाते ही वृद्धि को प्राप्त होने लगा और पुरुषार्थ करते-करते आज वह पौधा एक हरे-भरे, फूल-फलों से विकसित वृक्ष के रूप में सभी को अपनी छाया प्रदान कर रहा है **आर्यिका विज्ञानमती माताजी** के रूप में।

अभीक्ष्ण ज्ञान सम्पत्ति की स्वामिनी, जिनकी करुणा फूल से भी ज्यादा कोमल, जिनका ज्ञान सागर से भी गहरा, जिनके प्रवचन अमृत से भी तृप्तिकर, जिनका तप अग्नि से भी दीप्तिमान, जिनकी दया वृक्ष से भी विशाल, ऐसी अद्‌भुत अलौकिक प्रतिभासम्पन्न आत्मा ने इस धरा पर नारी रूप में अवतरित होकर न केवल स्वयं का कल्याण किया है वरन् मानवता के उपवन को भी सुन्दर रूप से सजाने-सँवारने के लिए आर्यिका होकर अभूतपूर्व योगदान कर रही हैं। पू. आर्यिका श्री विज्ञानमतीजी विलक्षण प्रतिभा की धनी होने के साथ-साथ तर्कपूर्ण विवेक बुद्धि से भी सम्पन्न हैं। इसी तर्कपूर्ण विवेक बुद्धि की परिचायक यह कृति **अनर्थदण्ड** अर्थात् प्रयोजनभूत क्या है और अप्रयोजनभूत क्या है ? आचार्य समन्तभद्र स्वामी की ८ कारिकाओं को आधार बनाकर अपने चिन्तन-मनन से पू. आर्यिकाश्री ने इस कृति में मुख्य रूप से हम बिना प्रयोजन के पापों से बचकर अहिंसा धर्म का पालन कैसे करें, बिना प्रयोजन के कर्म-बंध से अपने आपको कैसे बचाएँ; यद्यपि संसारी प्राणी के एक क्षण भी ऐसा नहीं है कि जब उसके कर्म का बंध न हो रहा हो। कर्मबंध होता ही है, तथापि हम यदि अपने विवेक को जागृत कर लेवें तो बिना प्रयोजन के कर्मबंध से बच सकते हैं। लेकिन हम बिना प्रयोजन के पाप से कैसे बचें, इसकी जानकारी न होने से यद्वा-तद्वा प्रवृत्तियाँ करते रहते हैं, जिससे दुखों की श्रृंखला बढ़ती चली जाती है और चतुर्गति भ्रमण का चक्कर अनवरत रूप से चलता रहता है।

अनादिकालीन, अनवरत रूप से चले आ रहे भ्रमण को हम अभी पूर्णत: मेटने में समर्थ नहीं हैं तो भी सीमित अवश्य कर सकते हैं अपने विवेक, बुद्धि को जागृत करके। प्रस्तुत कृति में पू. आर्यिकाश्री ने यही प्रसंग उठाया है। प्रथमत: अनर्थदण्ड क्या है, इसके कितने भेद हैं और फिर हमारे दैनिक जीवन में क्या आवश्यक है, क्या अनावश्यक हम कर लेते हैं यह सब बताया गया है। जैसे भगवान की पूजा करना आवश्यक है, लेकिन पूजा के बीच में किसी को देखकर उसके बारे में सोचना, किसी की इधर-उधर की बातें सुनना या किसी को कुछ कहना आवश्यक नहीं है। इन्हीं संदर्भों को पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दु:श्रुति और प्रमादचर्या रूप पाँच भेदों में बताया गया है। फिर मानसिक, वाचिक, कायिक, तीन बिंदुओं को लेकर हमारे खाने-पीने में, बोलने में, पहनने में, साज-श्रृंगार करने में, पारिवारिक जन से व्यवहार निभाने में, मित्रता, रिश्ते-नाते आदि निभाने में कितना आवश्यक करते हैं और कितना अनावश्यक कर लेते हैं..... इस सबको, गुरुओं से प्राप्त आगमबोध को अपनी तर्कबुद्धि से वर्तमान परिवेश को दृष्टि में रखते हुए लिपिबद्ध किया है।

लौकिक जीवन को जीते हुए भी पारलौकिकता को हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं- यह सम्पूर्ण विधि इस कृति में परिलक्षित होती है और फिर इस अनावश्यक पाप से बचने में न हमें पैसों की जरूरत है, न कोई श्रम ही करना है, न ही किसी अन्य की सहायता की आवश्यकता है। आवश्यकता है मात्र अपने दिमाग की, बुद्धि की, विवेक की। और यदि हम अपने विवेक को जगाने में स्वयं समर्थ नहीं हैं तो पू. आर्यिकाश्री के विवेक रूपी जलोदधि से निकली अनमोल निधि स्वरूप इस कृति को पढ़कर अपनी आत्मा को पतन से बचा सकते हैं।

मुझे विश्वास है कि जिस प्रकार पूज्य आर्यिकाश्री की पूर्व प्रकाशित कृतियों – **शील मंजूषा, संस्कार मंजूषा, पलायन क्यों, बहू कैसी**.... ने जन-जन के मानस सरोवर को तरंगायित करके उनके जीवन को सुसंस्कृत बनाया है उसी प्रकार यह कृति भी आपको अनावश्यक पापों से बचाकर क्रमश: एक दिन पूर्णत: पाप से छुड़ाकर, साहस शौर्य देकर मोक्षमार्ग पर आगे बढ़ायेगी।

संसार में सभी का कल्याण हो, सभी अनावश्यक पापों से बचें। मैं भी पूज्य आर्यिकाश्री के समान ही अहिंसा धर्म का परिपालन करके अहिंसा की पूर्णता को प्राप्त करूँ। इसी भावना से रत्नत्रय प्रदातृ गुरु माँ के चरणारविन्द में कोटि-कोटिश: वंदामि।

जिनवाणी के परम भक्त, संयमित जीवन जीने वाले, सदैव श्रुतसेवा में तत्पर **डॉ. चेतनप्रकाश जी पाटनी** ने अपने पठन-पाठन से समय निकालकर इस कृति का सम्पादन कार्य किया है, एतदर्थ आप साधुवाद के पात्र हैं।

संघस्था

आर्यिका आदित्यमती

अनुक्रमणिका

♦ भूमिका १
♦ उद्देश्य २
- अनर्थदण्ड क्या है? ३
- अनर्थदण्ड किसे कहते हैं? ३
- अनर्थदण्ड के भेद ४

(१) पापोपदेश ५
- मकान आदि के विषय में ७
- खेती आदि देखकर ७
- व्यापार के विषय में ९
- धार्मिक क्षेत्र में ११
- सामान्य रूप से १२
- उपसंहार १३

(२) हिंसादान १३
- हिंसा के उपकरण रखने से हानि १४
- हिंसक पशुओं को रखने से हानि १५
- हिंसा की वस्तुएँ नहीं देने से लाभ १६
- सुखपाल सुखी हुआ १७
- सावधानियाँ १८
- उपसंहार १९

(३) अपध्यान २०
- अपध्यान से नरक गया २१
- दुर्विचार से पागल हो जाता है २२
- टी.वी. देखकर २२
- उपसंहार २३

(४) दुःश्रुति २४
- खोटा अध्ययन-पठन-श्रवण २५
- उपसंहार २७

(५) प्रमादचर्या २८

१. जल सम्बन्धी प्रमाद वृत्तियाँ ३०
- पानी का दुरुपयोग कहाँ, कैसे? **३१**
- मंजन करते समय ३२
- नहाते समय ३३
- टंकी भरते समय ३४
- हेण्डपम्प से पानी भरते समय ३५
- पीते समय ३५
- आँगन धोते समय ३८
- कपड़े धोते समय ३९
- पैर धोते समय ४१
- अनावश्यक प्रयोग ४२
- बर्तन साफ करते समय ४३
- शंका-समाधान ४६
- पानी बहाने से हानियाँ ४७
- उपसंहार ५०

२. विचार सम्बन्धी ५०
- अप्रयोजनभूत विचार ५१
- श्मश्रू नवनीत ५१
- पूजा-आराधना करते समय ५२
- पढ़ाई के समय ५४
- शादी के सन्दर्भ में ५५
- मन को समझाने सम्बन्धी ५७

३. बोलते समय ६२
- बहू बेटों से ६३
- अब लगानी पड़ी जबान पर लगाम ६४
- शंका-समाधान ६७
- मकान बनाने में ६७
- बातों-ही-बातों में ६९
- वक्ताओं में ६९
- किसी की बुराई में ७०
- धार्मिक स्थलों पर ७१

४. वस्तुएँ रखने में ७३
- फटे कपड़े भी काम के ७५
- फटे कपड़े भी गुरु बने ७६
- नये कपड़े भी अनर्थक ७८
- नयी वस्तुएँ भी अनावश्यक ८०
- जब सही समझ में आया ८१
- व्यापारिक क्षेत्र में ८२
- समझदारों के यहाँ ८२
- अनावश्यक रखने से हानि ८४
- महापुरुषों के विचार ८७

५. भोजन में ९०
- विशेष अभक्ष्य ९३
- अनावश्यक भोजन से हानि ९५
- उपसंहार ९८

६. अग्नि सम्बन्धी **९९**
- बच्चों को खिलाते समय १०१
- मोबाइल से हानि १०१
- मंदिर में १०३
- दान देते समय १०५
- घर में १०६
- सामाजिक स्तर पर १०८
- लाइट जलाने से हानि १०९
- उपसंहार १११

७. भोग-उपभोग की सामग्री में ११२
- टी.वी. रखने में ११४
- वस्त्राभूषण में ११५
- औषधि में ११७
- पुस्तकादि रखने में ११७
- शो की वस्तुओं में ११९
- खाने-पीने की वस्तुएँ १२०
- उपसंहार १२०

८. वनस्पति सम्बन्धी १२०
- मंजन में १२१
- फूल चुनते समय १२१
- कार्यक्रम में १२२
- औषधि में १२३
- उपसंहार १२३
- अंगोपांग के संचालन में १२४
- पेन पेन्सिल हाथ में है तो १२५
- इधर-उधर के अनर्थदण्ड १२५
- बैठे-बैठे १२६
- नाखून खाते हैं १२७
- बजाने लगते हैं १२७
- चलते-चलते १२८
- उपसंहार १२९
- आर्यिका श्री के अमृत वचन 130

वन्दना

मैं त्रिलोकपूज्य परम वन्द्य **पंचपरमेष्ठी** भगवन्त के चरणों में भक्तिपूर्वक नमन करती हूँ। जिनके जीवन में अनावश्यक कार्यों की गंध भी नहीं है ऐसे संतशिरोमणि **आचार्य गुरुवर विद्यासागरजी महाराज** को मैं सिद्ध आदि भक्तिसहित वन्दना करती हूँ। जिन्होंने मुझे प्रत्येक कार्य को विवेकपूर्वक करना सिखाया ऐसे परम श्रद्धेय पूजनीय **दीक्षागुरु स्वर्गीय आचार्यकल्प विवेकसागर जी मुनिराज** के चरणों में कोटिश: वन्दन-वन्दन-वन्दन। जिनसे मुझे सब कुछ मिला ऐसी माँ **आर्यिका विशालमतीजी** को भी बारम्बार वन्दामि-वन्दामि।

सब गुरुओं के पदारविन्द में शत-शत वन्दन-वन्दन।

भूमिका

सिद्ध के समान शुद्ध यह जीव अनादिकाल से अपनी ही भूल के कारण संसार में परिभ्रमण कर रहा है। संसार में रहने का मूल कारण विभाव परिणाम है। राग-द्वेष, मोह, तेरा-मेरा, पक्षपात, अच्छा-बुरा, ऐसा-वैसा आदि अनेक प्रकार के विकल्प इस जीव में उठते ही रहते हैं। कई बार हम कोशिश भी करते हैं कि ये विकल्प समाप्त हो जावें, इन सब बातों से मुझे मतलब ही क्या है ? लेकिन यह सब क्षणिक होता है। कुछ देर के लिए मन में ऐसे विचार उत्पन्न होते हैं पुन: वही काम शुरू हो जाता है अर्थात् फिर से राग-द्वेष के भाव उत्पन्न हो जाते हैं, यह स्वयं राग-द्वेष कर लेता है, करता है। कभी-कभी तो हमारे मन में राग-द्वेष नहीं भी हो रहे हों तो भी कषाय के वशीभूत हो हम राग-द्वेष करते हैं। कभी-कभी जान-बूझ करके हम संसारभ्रमण के कार्य करते हैं। अस्तु। जब तक हम बुद्धिपूर्वक पुरुषार्थ करके राग-द्वेषादि विभाव परिणामों को नहीं छोड़ेंगे, हमारा भ्रमण समाप्त नहीं हो सकता, लेकिन अनन्तकाल से चले आ रहे असंख्यात लोकप्रमाण विभाव परिणामों को हम एक क्षण में नहीं छोड़ सकते हैं। अत: हम क्या उपाय करें कि जब-तक हम संसार में रहें अथवा हमें संसार में रहना पड़े तब तक हमारी दुर्गति नहीं हो, हमें शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, आगन्तुक आदि दु:खों को नहीं सहना पड़े और साथ-ही-साथ संसार भ्रमण को मिटाने के योग्य साधन सामग्रियाँ, गुरु का सान्निध्य, भगवान के दर्शन, सत्साहित्य का व शास्त्रों का पठन-पाठन तथा मोक्षमार्ग प्राप्त होता रहे ताकि हम संसार परिभ्रमण को कम करते-करते एकदिन अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लें अर्थात् सम्पूर्ण विभाव परिणामों को नष्ट करके सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लें।

उद्देश्य

संसार में रहते हुए व्यक्ति को खाना, बोलना, चलना, सोना, कमाना, पहनना, आना-जाना, खरीदना, लाना-ले जाना आदि अनेक कार्य करने आवश्यक होते हैं। इन सब कार्यों को करने में यह प्राणी कैसे खाये, कितना खाये, कैसे चले, क्या पहने, कितना खरीदे, कितना रखे, जिससे उसकी जिन्दगी तथा गृहस्थधर्म दोनों अच्छी तरह से चलते रहें और वह पापों से भी बच जावे। ताकि वह दुर्गति में नहीं जावे। इन सब बातों को जाने बिना न विवेक रखा जा सकता है, न अविवेक, प्रमाद को छोड़ा जा सकता है। पहली बात तो यह कि हम जान ही नहीं पाते हैं कि हम गल्तियाँ भी कर रहे हैं या कर सकते हैं। हमें तो अपने आप पर विश्वास रहता है कि हम तो अविवेक का कोई काम कर ही नहीं सकते हैं। हम जो भी करते हैं, जितना भी करते हैं, सही ही करते हैं इसलिए किसी के द्वारा गलती बताने पर भी हम उसे स्वीकार नहीं करते हैं। दूसरी बात, कभी-कभी हमारी आत्मा हमें गुरु, समझदार व्यक्ति अथवा किसी धर्मात्मा की बात को मानने के लिए प्रेरित भी करती है, लेकिन हम अपने अहं को छोड़ नहीं पाते। उसी का परिणाम होता है कि पुन:पुन: भव व दु:ख मिलते हैं। इन सब दु:खों से, इन भवों से, इन जन्म-मरणों से कैसे बचा जाय यह एक प्रश्न है ? इसका उत्तर यही है कि हम विवेकपूर्वक कार्य करें, विवेकपूर्वक खायें-पीयें, अनावश्यक पापों से बच जायें तो भी काफी हद तक दु:खों से बच सकते हैं। सभी जीव विवेक को प्राप्त कर पाप से बचें, ऐसी मेरी भावना है।

वास्तव में, हम दैनिक जीवन में अपने शरीर, धन एवं स्वाभिमान की रक्षा करने के लिए, इन्द्रिय विषयों की पूर्ति के लिए उतने पाप नहीं करते, उतने दुष्कृत नहीं करते, उतनी कषायें नहीं करते जितने पाप, जितनी कषायें हम अनावश्यक करते हैं, जितने पाप हम अपने अविवेक के कारण कर लेते हैं, जितने अपने प्रमाद से तथा अपने अहं/अहंकार की पुष्टि के लिए कर लेते हैं। बस, इन अनावश्यक कार्यों को ही हमारे आचार्य भगवन्तों ने, ऋषियों ने जिनागम में **'अनर्थदण्ड'** के नाम से कहा है। वह अनर्थदण्ड क्या है ? अनर्थदण्ड किसे कहते हैं ? वह अनर्थदण्ड

कितने प्रकार का होता है ? हमारे जीवन में कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे अनर्थदण्ड हो जाते हैं अथवा हम कितने अनर्थदण्ड कर लेते हैं और इन अनर्थदण्डों का हमारे शरीर, धन, घर, व्यवहार, धर्म, परिवार एवं परभव पर क्या प्रभाव पड़ता है अर्थात् अनर्थदण्डों से क्या-कैसी हानियाँ होती हैं इन सबके बारे में मैं कुछ बताना चाहती हूँ। यद्यपि मैं स्वयं सभी अनर्थदण्डों से बची हुई हूँ ऐसी बात नहीं है फिर भी बचने की कोशिश तो करती ही हूँ।

जब कभी मैं लोगों की बातें सुनती हूँ, मंदिर-धर्मशाला आदि में व्यक्तियों की क्रियायें देखती हूँ, उनके घरों की सामग्रियाँ देखती हूँ तो ऐसा लगता है कि हा! ये बेचारे भोले जीव बिना जाने अविवेक के कारण कितने अनावश्यक पाप बाँध रहे हैं। बाँध लेते हैं? ये कैसे इन पापों से बचें, आदि-आदि विचारों से प्रेरित होकर यह सब लिखने का भाव उत्पन्न हुआ है। इसमें कोई गलती हो तो विद्वान्-अनुभवीजन सुधार का संकेत अवश्य दें अथवा सुधार करके पढ़ें।

अनर्थदण्ड क्या है?

'न अर्थ: अनर्थ:' जिस कार्य में कुछ अर्थ, सार, प्रयोजन नहीं हो वह अनर्थ है। दण्ड जो दण्डे के समान पीड़ा दे वह अनर्थदण्ड है। अथवा दण्ड का अर्थ सजा होता है अर्थात् जो अनावश्यक सजा दे, दिलवावे वह अनर्थदण्ड है।

राग की तीव्रता से, विषयासक्ति के परिणामों से, भोगों के प्रति अति लोलुपता से, प्रयोजन-अप्रयोजन का विचार किये बिना ही किसी भी कार्य में प्रवृत्त होना अनर्थदण्ड है।

समय को फालतू गप्पों में खोना भी अनर्थदण्ड है।

जितने भी पापजनक निष्प्रयोजन कार्य हैं, वे सब अनर्थदण्ड हैं।

अपने मन, वचन, कायरूप योगों की चंचलता से अकार्यों को भी करना अनर्थदण्ड है।

अनर्थदण्ड किसे कहते हैं?

जिससे अपना मतलब भी सिद्ध न हो और जो महान् पाप को उत्पन्न करे उसे अनर्थदण्ड कहते हैं, वे सभी कार्य जिनसे अपना कुछ प्रयोजन सिद्ध न हो, मात्र दूसरों को या स्वयं को प्रसन्न करने के लिए किये जाते हैं, जिनसे पाप का अर्जन ही होता है उन्हें अनर्थदण्ड कहते हैं।

कुटिलता रखना, हीनाधिक मानोन्मान रखना तथा क्रूर व माँसभक्षी जानवरों का पालन-पोषण करना भी अनर्थदण्ड के अन्तर्गत है। ''अपगत: अर्थ: प्रयोजनं येषां ते अपार्थका: योगप्रवृत्तिर्दण्ड:'' जिनका कोई प्रयोजन नहीं है ऐसी मन, वचन, काय की प्रवृत्ति करना अनर्थदण्ड है।

जिन कार्यों को करने से विषयभोग भी नहीं हो, कुछ लाभ भी ना हो, यश भी ना मिले, धर्म भी नहीं हो, मात्र पाप का ही निरन्तर बंध होवे और जिसके फल से दुर्गति में जाना पड़े उसे अनर्थदण्ड कहते हैं।

गृहस्थ श्रावक अपने प्रयोजन के लिए भूमिकानुसार बोलना, चलना, नहाना, खाना, फल/सब्जी तोड़ना आदि कुछ भी कर सकता है। परन्तु जिसमें अपना कुछ भी स्वार्थ न हो ऐसे कार्य करना अनर्थदण्ड है। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रयोजन सिद्ध करने के लिए किसी जीव को मार डालें, मदिरा-पान करें, जुआ खेलें.... ऐसे कार्य तो प्रयोजनभूत होकर भी अनर्थदण्ड में ही आते हैं।

अनर्थदण्ड के भेद

अनर्थदण्ड मुख्य रूप से पाँच प्रकार के कहे गये हैं-

(१) पापोपदेश (२) हिंसादान (३) अपध्यान

(४) दुःश्रुति (५) प्रमादचर्या।

अथवा - अनर्थदण्ड तीन प्रकार के होते हैं-

(१) मानसिक अनर्थदण्ड (२) वाचिक अनर्थदण्ड

(३) कायिक अनर्थदण्ड।

अथवा - अनर्थदण्ड दो प्रकार के हैं-

(१) लौकिक क्षेत्र में किये जाने वाले और

(२) पारलौकिक क्षेत्र में किये जाने वाले।

पापोपदेश - बिना प्रयोजन कृषि, आरम्भ, छल आदि का उपदेश देना **पापोपदेश** अनर्थदण्ड है।

हिंसादान - बिना प्रयोजन फरसा, तलवार, चाकू आदि हिंसा के उपकरण देना **हिंसादान** है।

अपध्यान - बिना प्रयोजन दूसरे की हार-जीत आदि के विचार करना **अपध्यान** है।

दुःश्रुति - मिथ्याशास्त्र, उपन्यास, कोकशास्त्र आदि खोटे शास्त्र पढ़ना, सुनना, सुनाना **दुःश्रुति** अनर्थदण्ड है।

प्रमादचर्या - बिना प्रयोजन चलना, फिरना, पृथ्वी खोदना, जल फेंकना, अंकुर, दूब आदि को तोड़ना मरोड़ना आदि **प्रमादचर्या** अनर्थदण्ड है।

मानसिक अनर्थदण्ड - बिना प्रयोजन मन में इधर-उधर के अनावश्यक विचार करते रहना **मानसिक अनर्थदण्ड** है।

वाचिक अनर्थदण्ड - वचनों से यद्वा-तद्वा बोलना, बिना पूछे सलाह देना आदि **वाचिक अनर्थदण्ड** है।

कायिक अनर्थदण्ड - बिना प्रयोजन इधर-उधर घूमते रहना, हाथ नचाना, पैर पटकना आदि **कायिक अनर्थदण्ड** है।

लौकिक क्षेत्र में किये जाने वाले अनर्थदण्ड - शादी-ब्याह, बर्थडे, औषधि खाने-पीने आदि के विषय में अनावश्यक खर्च करना, खाना-पीना आदि **लौकिक क्षेत्र में किये गये अनर्थदण्ड** हैं।

पारलौकिक अनर्थदण्ड - मन्दिर, तीर्थयात्रा, वृत-उपवास आदि पारलौकिक क्षेत्र के कार्यों में अनावश्यक विचार, क्रियाएँ आदि करना पारलौकिक अनर्थदण्ड है।

(१) पापोपदेश

जो उपदेश पाप के उपार्जन में कारण है, उसे पापोपदेश कहते हैं।

(१) किसी को मछली, मुर्गी आदि के पालन की प्रेरणा देना।

(२) अन्य देश से गाय, भैंस, बकरी आदि लाकर अन्य देश में बेचने की प्रेरणा देना, इस प्रकार के व्यापार से तिर्यञ्चों को क्लेश उत्पन्न होता है।

(३) किस जंगल, वन, देश आदि में कौन-से पशु-पक्षी अधिक मात्रा में पाये जाते हैं, किस विधि से उनको पकड़ा जा सकता है, आदि-आदि बातें बताना भी पापोपदेश है।

(४) गर्भपात के इंजेक्शन, गोलियाँ आदि बेचने के लिए कहना।

(५) फटाके, होली के रंग, आतिशबाजी की सामग्रियाँ, साबुन आदि बेचने के लिए कहना। और भी अनेक प्रकार की पापात्मक वस्तुओं को खरीदने, बेचने, बेचने-खरीदने की प्रेरणा देना पापोपदेश ही है।

(६) नेलपॉलिस, लिपिस्टिक, हाथी दाँत या लाख के खिलौने, चूड़ियाँ, सजावट की सामग्री आदि के उपयोग की प्रेरणा देना अथवा उपयोग करने वाले की प्रशंसा करना।

(७) मकान बनाने, कुआ खुदवाने, बगीचा लगवाने, दूब, बेल-बूटे, पौधे आदि लगाने की प्रेरणा देना।

(८) कुगुरु, कुदेव की पूजा करने की, श्रेष्ठ धर्म की क्रियाओं को रोकने की, दीक्षा लेने से रोकने की तथा दूसरों को दुःख उत्पन्न करने वाली सलाह, उपदेश देना पापोपदेश अनर्थदण्ड है।

(९) खोटी चतुराई सिखाना, चोर, भोजन, स्त्री आदि की कथाएँ कहना पापोपदेश है।

वैसे पापोपदेश अनेक प्रकार के होते हैं, उनमें से मुख्य रूप से चार प्रकार के पापोपदेश का वर्णन आगम में किया गया है।

(१) क्लेशवाणिज्य - इस देश में दास-दासियाँ सुलभ हैं उन्हें अमुक देश में ले जाकर बेचने पर अधिक लाभ होता है, ऐसा उपदेश देना क्लेशवाणिज्योपदेश है।

(२) तिर्यग्वाणिज्य - भैंस आदि को अमुक देश से खरीदकर अमुक देश में बेचने से अधिक लाभ होता है, ऐसा उपदेश देना तिर्यग्वाणिज्योपदेश है।

(३) वधकोपदेश - जाल फैलाने वाले, शिकार करने वाले तथा पक्षियों को मारने वाले लोगों को तत्सम्बन्धी उपदेश देना वधकोपदेश है।

(४) आरम्भकोपदेश - पृथ्वी आदि के आरम्भ करने के उपाय बताना आरम्भकोपदेश है।

पापोपदेश अर्थात् पाप का उपदेश अनेक प्रकार से और अनेक स्थानों

पर दिया जा सकता है। उनमें से कुछ नीचे लिखे जाते हैं-

(१) मकान बनाने के विषय में (२) खेती आदि को देखकर(३) व्यापार-व्यवसाय के विषय में (४) धार्मिक क्षेत्र में (५) सामान्य रूप में।

(१) मकान आदि बनाने के विषय में

किसी का प्लॉट देखकर कहना कि भैया ! तुम तो पैसा उधार लेकर तीन-चार मंजिल का मकान बनवा लो। प्रतिमाह १०-१५ हजार रुपये किराये के मिलेंगे। धीरे-धीरे पूरा कर्जा उतर जायेगा और कर्जा उतरने के बाद जीवनभर बैठे-बैठे आनन्द से खाओ, सब चिन्ताएँ समाप्त। आपके कहने से उसने मकान बना लिया, किराये पर भी दे दिया लेकिन क्या मकान प्रवेश के समय उसने आपको याद भी किया। कभी आपके प्रति कृतज्ञता व्यक्त की कि आपके कहने से मैंने मकान बना लिया, मेरा तो जीवन ही आनन्दमय हो गया। इसी प्रकार किसी के मकान के सामने थोड़ी-सी खाली जगह देखकर आपने कह दिया- अरे ! अपनी इस जगह में छोटा-सा बगीचा लगा लो, दूब उगा दो, दो चार गमले रख दो, कुछ फूलों की बेलें लगा दो, आदि.... इससे आपको क्या मिलेगा ? मात्र वनस्पति उगाने, कटिंग करने, रौंदने, उसमें घूमने, तोड़ने, छीलने आदि के पाप का छठा अंश।

एक महिला किसी साधु को आहार देने एक श्रावक के घर गयी। उसके घर की सीढ़ियाँ बहुत ऊबड़-खाबड़ थीं। उसने कहा-भाई साहब ! आप अबकी बार कुछ करवायें या न करवायें, ये सीढ़ियाँ जरूर सुधरवा लेना। आप सोचें, शायद ही वह (कहने वाली) कभी वापस उस घर में जायेगी तथा उसके कहने से वे सीढ़ियाँ बनवायें या न बनवायें लेकिन सीढ़ियाँ बनवाने में लगने वाले पाप का छठा अंश तो उसे अवश्य लग ही गया।

(२) खेती आदि देखकर

पानी की समस्या देखकर प्राय: हम कह देते हैं कि अरे ! तुम्हारे कौन-सी कमी है एक बोरिंग/हैण्डपम्प/जेट लगवा लो, कुआ खुदवा लो, जिन्दगी भर का आराम हो जायेगा। घर में पानी-पानी हो जायेगा। इसी प्रकार किसी किसान/जमींदार या सेठ को कहना कि तुम अपने खेत में बोरिंग करवा लो। साल भर की तीन फसल आयेगी। आस-पास के खेतों में सिंचाई के लिए पानी बेच भी देना.....। यह बात अलग है कि हमारे घर खेत में बोरिंग की आवश्यकता होने

पर बोरिंग आदि खुदवावें उसमें इतना पाप नहीं लगेगा जितना दूसरे के यहाँ खुदवाया भी नहीं, मात्र खुदवाने के लिए कहने में लग गया। क्योंकि अपने घर का काम करना आवश्यक है जबकि दूसरे को सलाह देना, प्रेरणा देना आवश्यक नहीं है।

सुखदास को पापोपदेश का फल

रामदास तथा सुखदास दोनों में घनिष्ठ मित्रता थी। रामदास कारोबार/व्यापार-व्यवसाय, फैक्ट-ी आदि के रूप में सम्पदा का धनी था तो सुखदास के पास जमीन-जायदाद, सोना-चाँदी, खेती-बाड़ी के रूप में अचल सम्पदा थी। दोनों ही लगभग बराबर सम्पदा के स्वामी थे। अधिकांशत: दोनों ही अपने कामों में व्यस्त रहते थे। फिर भी चार-आठ दिन में वे एक-दूसरे से मिल ही लेते थे। जब वे मिलते थे तो अपने घर-परिवार, व्यापार-व्यवसाय आदि सम्बन्धी बातें भी अवश्य करते थे। इन बातों के साथ वे एक-दूसरे को धनवृद्धि के लिए सलाह भी देते थे। रामदास सदा अपने मित्र सुखदास को एक सुन्दर बगीचा लगाने की प्रेरणा/उपदेश जरूर देता था क्योंकि उसको फल-सब्जी आदि खाने, उद्यानों में घूमने, रंग-रंगीले फूल सूंघने, देखने का बहुत शौक था। बार-बार उसकी प्रेरणा एवं उससे होने वाले लाभों को बताने से सेठ सुखदास ने उसकी बात मानकर एक बहुत बड़ा बगीचा लगा लिया, जिसमें आम, अमरूद, नीबू आदि के अनेक प्रकार के वृक्ष थे। गुलाब, चम्पा, चमेली आदि फूलों की क्यारियाँ भी लगी थीं अर्थात् उसने एक बहुत बड़ा मनमोहक उद्यान विकसित कर लिया।

एक दिन उनके नगर में एक मुनिराज का आगमन हुआ। दोनों सेठ मुनिराज का प्रवचन सुनने गये। मुनिराज ने उपदेश में बताया कि ''मकान बनाने, बाग लगाने आदि की सलाह देने वाले को मात्र उन कार्यों के सम्पन्न होने में जितना पाप लगता है उसका छठा अंश पाप मिलता है और कुछ भी नहीं मिलता है। न उसे मकान में रहने को मिलता है, न बगीचे में घूमने को और न ही बगीचे के फल खाने को मिलते हैं। यहाँ तक कि जिसको सलाह दी है वह कभी कृतज्ञता का निर्वाह तक नहीं करता है।'' प्रवचन सुनकर रामदास कहता है, ''नहीं महाराज ! ऐसा नहीं हो सकता। कोई-कोई भले ही ऐसे हों लेकिन अधिकतर लोग तो सलाह देने वालों को अपने बगीचे के फल खिला ही देते हैं.....।'' महाराज के बहुत समझाने पर भी उसको महाराज की बात पर विश्वास नहीं हुआ। कुछ दिनों के बाद मुनिराज का विहार हो गया। समय बीतता गया। दोनों सेठ वृद्ध हो गये। एक बार वृद्धावस्था

के कारण कई दिनों तक वे दोनों नहीं मिल पाये तो एक दिन रामदास अपने मित्र से मिलने के लिए उसके घर पहुँचा। मित्र घर पर नहीं था। घर वालों ने बताया कि सेठ जी बगीचे में गये हैं। उसको अपने मित्र की बहुत याद आ रही थी इसलिए वह स्वयं बगीचे में पहुँच गया। सुखदास एक वृक्ष के नीचे बैठा ठंडी हवा खा रहा था। सेठ को देखकर वह सामने आया और रामदास का हाथ पकड़कर वृक्ष के नीचे ले गया। दोनों ने बैठकर अपने सुख-दु:ख की बातें कीं। फिर रामदास बोला- ''देखो सुखदास! तुम्हारा बगीचा कुछ ही वर्षों में कितना अच्छा फल-फूल गया है।'' सुखदास बोला- ''हाँ भाई ! इसके फलने में बहुत खून-पसीना एक करके मेहनत करनी पड़ी है तब कहीं जाकर यह आज फला-फूला है।'' कुछ देर के बाद फिर रामदास ने कहा, ''मैंने भी कई बार सोचा था कि तुम्हारा बगीचा देखूँ लेकिन.....।'' ''हाँ, हाँ मैंने भी कई बार सोचा था और कई बार बच्चों से भी कहा था कि एक बार काकाजी को बुलाकर बगीचा दिखाओ, कुछ फल-फूल तोड़कर काकाजी के यहाँ दे आओ......। लेकिन दिमाग से बात ही निकल गई, एक बार भी योग नहीं बन पाया कि मैं तुम्हें अपने बगीचे के फल खिलाऊँ......।'' जब वह जाने लगा तो सुखदास उसको दरवाजे तक छोड़ आया परन्तु उसने एक बार भी उसे बगीचे में घूमने के लिए, फल खाने के लिए नहीं कहा और न ही उस बगीचे को बनाने में जो उसने सलाह / प्रेरणा दी थी उनको ही याद किया। तब रामदास को समझ में आया कि उस दिन जो मुनिराज ने बताया था वह आज अनुभव में आया कि वास्तव में मुझे सलाह देने का फल पाप मात्र ही मिला। न बगीचे में घूमने को मिला, न बगीचे के फल खाने को मिले और न ही यश मिला...। वह पुन: गुरु के पास गया। उसने अपने किये तर्कों के लिए क्षमायाचना की तथा पापों का प्रायश्चित्त माँगा एवं आगे के लिए इस प्रकार की सलाह देने का त्याग कर दिया।

व्यापार के विषय में

(१) लुहार, सुनार, दर्जी तथा विद्या, ज्योतिष आदि से आजीविका उपार्जन का उपदेश देना व्यापार-सम्बन्धी पापोपदेश है।

(२) नेलपॉलिस आदि हिंसक सौन्दर्य प्रसाधन की सामग्रियों की दुकान खोलने के लिए कहना।

(३) तँबाकू, भांग, शराब आदि बेचने की प्रेरणा देना, आदि अनेक प्रकार के व्यापार के क्षेत्र में किये गये उपदेश/आदेश, सलाह व्यापार विषयक पापोपदेश नामक अनर्थदण्ड है।

(४) स्मेक, बीड़ी, सिगरेट बेचने, गर्भपात का क्लिनिक खोलने, जीवघातक औषधि बेचने, रखने, बताने आदि के लिए कहना।

(५) फरसा, तलवार, गैंती, कुदाली, आयुध, संबल, कुल्हाड़ी, चाकू, बन्दूक, हँसिया, उस्तरा, साँकल आदि अर्थात् 'हार्डवेयर' की दुकान खोलने के लिए उत्साहित करना ।

आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज ने **'मानवधर्म'** नामक ग्रन्थ में पापोपदेश अनर्थदण्ड का वर्णन करते हुए कहा है-

''बातों ही बातों में ऐसी चेष्टा करना या प्रसंग कर बैठना जिसके कारण गाय, बैल, भैंस आदि पशुओं, जानवरों को कष्ट उठाना पड़े। किसी व्यक्ति को व्यापार आदि कारोबार करने के लिए इतना अधिक प्रेरित करना, उत्कंठित कर देना कि जिसके कारण वह अपनी श्रावकोचित क्रियाओं को भी जैसे पूजा, दान आदि नित्यप्रति के कर्त्तव्य यहाँ तक कि खाना-पीना भी भूल जाये, किसी भी प्रकार की हिंसा होने का प्रसंग तैयार हो जाये एवं लोगों में उत्कृष्ट लोभ-लालच के भाव / परिणाम होने लग जायें, ये सब एक प्रकार से व्यापार सम्बन्धी अनर्थदण्ड ही हैं।''

मान लिया, आपने दीपावली का समय सामने देखकर किसी को फटाके बेचने की प्रेरणा दी। सामने वाले ने आपकी बात मानकर फटाके की दुकान लगा ली, अच्छा लाभ हो गया; उसने आपको कितना पैसा दिया, कितनी बार आपको इसके लिए धन्यवाद दिया, कितनी बार आपकी प्रशंसा करते हुए कहा कि आपने उसको कितनी अच्छी सलाह दी जिससे उसने इतना धन कमा लिया अथवा आप कितने परोपकारी, नि:स्वार्थी व्यक्ति हैं आदि.....। दूसरी तरफ यदि फटाके से आग लग गई, वह जल गया तो क्या कहेगा, यही कि मैंने तो कभी सोचा ही नहीं था कि मैं फटाके की दुकान करूँ लेकिन मेरी बुद्धि भी कहाँ भ्रष्ट हो गई, इनकी बातों में आ गया। मेरा तो जीवन ही बरबाद हो गया आदि....। आपको अपयश मिला, समय-समय पर ताने मिले और फटाके चलने में जितना पाप लगा उसका छठा

अंश।

उपर्युक्त व्यापार करने के लिए पैसा उधार देना, सहायता देना, इनके लिए सम्पर्कसूत्र बताना, माल खरीदने के लिए स्थान, व्यक्ति का नाम आदि बताना सब अनर्थदण्ड के अन्तर्गत हैं।

धार्मिक क्षेत्र में

किसी को बलि चढ़ाने का उपदेश देना, अन्न-फल आदि न खाकर गाँजा-चरस आदि खाने की प्रेरणा करना, ब्रह्मचारी को भोग के लिए यह कह कर प्रेरित करना कि **'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति'** जिसके पुत्र नहीं होता है उसकी गति नहीं सुधरती है, इसमें अब्रह्म रूप पाप करने का उपदेश है।

जीव तो खाता ही नहीं है, खाये हुए भोजन में से एक परमाणु भी आत्मा के प्रदेशों में नहीं जाता है इसलिए भक्ष्याभक्ष्य का विवेक किये बिना ही जो कुछ खाते रहने पर भी हमारी दुर्गति नहीं होती, हमें दुःख नहीं भोगने पड़ते हैं क्योंकि खाता तो शरीर है आदि.... कहकर भोले लोगों को त्याग धर्ममार्ग से विमुख कर देना भी पापोपदेश की श्रेणी में ही आता है।

बोली के पैसे, दान आदि में दी हुई सम्पत्ति को खा जाने की अर्थात् हड़पने की प्रेरणा करना भी बहुत बड़ा पापोपदेश है। एक स्थान पर किसी ने मंदिर के लिए एक प्लॉट दान में दिया था। प्लॉट मन्दिर से लगा हुआ था इसलिए मंदिर में आवश्यक भी था। फिर भी किसी एक मूर्ख व्यक्ति ने प्लॉट देने वाले के पौत्र को उल्टी पाटी पढ़ाई, प्लॉट हड़प लेने की शिक्षा दी। जाली रजिस्ट्री भी बनवा दी। समय पर मंदिर का काम लगा। उसने बीच में अड़ंगा लगाया। समाज के वरिष्ठ लोगों ने उसको बहुत समझाया। लेकिन उसने बहकावे में आकर किसी की बात नहीं मानी। आखिर समाज के लोगों ने रातोंरात प्लॉट को मंदिर में मिला लिया। आप सोचें, प्लॉट हड़पने के लिए कहने वाले को क्या मिला अपयश, पाप, क्लेश, समाज की दृष्टि से गिरना, बेइज्जती तथा परभव के लिए दुर्गति, निर्धनता, दुःख ही दुःख।

मंदिर की जमीन, जायदाद, दुकानें आदि जो बहुत अल्प किराये से ले रखी हैं उनको महंगाई के अनुसार किराया आदि नहीं बढ़ाने देना, दुकान खाली नहीं करने देना, अल्प मात्र किराये को भी वर्षों तक नहीं चुकाने देना; किसी के कहने पर झट से कह देना कि सभी लोग खा रहे हैं, खाते हैं, तुम खाओ तो कोई पाप नहीं है, आदि-आदि कहकर निर्माल्य खाने के लिए प्रेरित करना पापोपदेश है।

कोई दान दे रहे हों तो उन्हें रोक देना, कह देना कि इस युग में दान नहीं देना चाहिए। दिया हुआ दान ट्रस्टी लोग बीच में खा जाते हैं। मंदिर का काम चल रहा हो, मंदिर के लिए कुछ खरीदा जा रहा हो तो उसके लिए पचास के स्थान पर पाँच सौ का बिल बनाने की प्रेरणा देना, इससे बिल बनाने वाले को तो पैसा मिला लेकिन उपदेश देने वाले को क्या मिला? कुछ नहीं।

उपर्युक्त सभी कार्य धार्मिक क्षेत्र में किया गया पापोपदेश-नामक अनर्थदण्ड है। इसी प्रकार के और भी अनेक कार्य हैं जो अनर्थदण्ड में आते हैं। उन पर भी गहराई से विचार कर उनका त्याग करना चाहिए।

सामान्य रूप से

जिसको सुनकर कोई रागभाव उत्पन्न करने वाला नाचना, गाना, बजाना सीखे, जिसको सुनकर पंचेन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति अर्थात् खाने-पीने की नयी वस्तुओं को बनाने की इच्छाएँ उत्पन्न हों, बनाने की कलाएँ सीखें, वे सब बातें भी पापोपदेश में ही आती हैं।

जिन बातों को सुनकर क्रोधादि दुष्परिणाम उत्पन्न हों, क्लेश भाव उत्पन्न हो, लड़ाई-झगड़ा पैदा हो जावे अर्थात् पुरानी बातें जिनको सुनकर आँखें लाल हो जावें, अन्दर में कषाय की आग उबलने लगे, ऐसी सब बातें पापोपदेश में ही आती हैं। जैसे- शकुनि मामा ने गांधारी को भीष्म पितामह के द्वारा हरण करने की बात याद दिला-दिला कर क्रोध की आग भड़काई। दुर्योधन को बार -बार षड्यंत्र बनाकर पांडवों को मारने का उपदेश दिया, विधियाँ बताईं, यह सब पापोपदेश अनर्थदण्ड है। फल में शकुनि को मात्र मौत मिली, अपयश मिला। आज कोई उसके नाम से अपने बेटे का नाम तक नहीं रखता है। क्या यह अनर्थदण्ड नहीं हुआ?

विशेष - मंदिर, जिनबिम्ब, जिन प्रतिमा, साधर्मी भाई, गुरु, जिनवाणी आदि की रक्षा के लिए झूठ बोलना, मायाचारी छल आदि करने की सलाह देना तो पापोपदेश में आता ही नहीं है। यहाँ तक अपने आयतनों की रक्षा करने के

लिए मरने-मारने, लड़ने डाँटने-फटकारने, जेल आदि में ड़ालने का उपदेश देना, प्रेरणा देना, दबाव डालकर मजबूर कर देना भी पापोपदेश में नहीं आता है। क्योंकि कोई भी कार्य कषायों के वश या पंचेन्द्रिय के विषय भोगों की आसक्ति के वश में होकर किया गया ही पापोपदेश में आता है।अपने आयतनों की रक्षा करने में कषायों की उगृता नहीं है और न ही पंचेन्द्रियों के विषयों की आसक्ति है तथा न कुछ स्वार्थप्रद भाव है। इसलिए वह पापोपदेश में नहीं आता है। यदि वहाँ पर भी हमारा कोई निजी स्वार्थ निहित है तो वह पापोपदेश में ही आता है। यदि कोई अपने पद की गरिमा को भूलकर ऐसा उपदेश देता है तो वह भी पापोपदेश में ही आयेगा।

उपसंहार

इस प्रकार हम प्रतिदिन अपने जीवन में न जाने कितने अनावश्यक पाप-कार्य करने की प्रेरणा देते हैं। कभी-कभी तो हम सामने वाले को पापात्मक व्यापार, बाग-बगीचा आदि लगाने के लिए मजबूर कर देते हैं। सामने वाला पाप करता है अथवा आपसे प्रेरित होकर उसे पाप करना पड़ता है अथवा वह एक बार आपके कहने से पापकार्य में लगकर जीवनभर पाप करता रहता है मुझे तो ऐसा लगता है कि करने वाले को शायद इतना पाप नहीं लगता होगा जितना पाप आपको अर्थात् प्रेरणा देने वाले को लग जाता है। हमें भले ही जीवननिर्वाह के लिए पाप करने पड़ते हैं या हम जीवननिर्वाह के लिए पाप करते हैं लेकिन कम-से-कम हम अनावश्यक पापोपदेश से तो बचें। यदि हम मात्र अनर्थक पापोपदेश से भी बच गये तो हमारे जीवन में काफी मात्रा में पापास्रव रुक सकते हैं।

(२) हिंसादान

जो उपकरण स्वयं के व दूसरों के प्राणों का घात करने में निमित्त हों वे सभी हिंसोपकरण कहलाते हैं। ऐसे हिंसोपकरणों का संग्रह करना, आदान-प्रदान करना आदि हिंसादान अनर्थदण्ड है।

माँस-मदिरा बेचने वाले को, कसाई, धोबी, चमार, ईंट का आवा लगाने वाले कुम्हार को, जुआरी, वेश्यालय चलाने वाले, माँसभक्षी, निन्द्य पापात्मक आजीविका करने वाले को ब्याज पर पैसा देना भी एक प्रकार से हिंसादान ही कहलाता है।

हिंसक पशु बिल्ली, कुत्ता, सर्प, मुर्गा आदि को पालना, उनका रक्षण करना भी हिंसादान ही है क्योंकि हमारे द्वारा दिये गये भोजन-पानी आदि से प्राप्त शक्ति से ये पशु-पक्षी निश्चित रूप से हिंसा ही करते हैं। दूसरी बात, कुत्ते आदि को अनेक प्रकार का अच्छा भोजन करवा देने पर भी सामने चूहे-बिल्ली आदि को देखकर वे उनको मारे बिना, उन पर झपटे बिना नहीं रहते हैं। इसलिए इनको पालना भी हिंसादान कहा गया है।

बस, मोटरगाड़ी, जीप-कार आदि का व्यापार भी महाहिंसा है क्योंकि इन वाहनों के माध्यम से चौबीस घंटे हिंसा ही होती रहती है।

बारूद, साबुन, ब्रूश, कूटना, सर्फ, चूहा आदि मारने की दवाइयाँ, लक्ष्मण रेखा, कछुआ छाप अगरबत्ती, अलौड, गुड नाइट आदि बेचना भी हिंसादान है क्योंकि इन वस्तुओं का जब भी जो भी उपयोग करेगा, हिंसा ही होगी।

जिस किसी को बिना सोचे-विचारे, पात्र-कुपात्र-अपात्र आदि को नहीं देखते हुए पैसों का दान देना भी हिंसादान है क्योंकि जिसको हमने पैसा दिया है वह उन पैसों का क्या उपयोग करेगा, उन पैसों से कहीं वह पापात्मक कार्य करने लगे, उन पैसों से पापात्मक पदार्थों का भक्षण करने लगे तो उसके पाप का अंश दान देने वाले को भी लगेगा ही/लगता ही है। एक दिन एक गरीब-सा भिखारी जैसा एक लड़का एक सेठ के पास गिड़गिड़ाने लगा। सेठ ने दया करके उसको पाँच रुपये का नोट निकालकर दे दिया। उस लड़के ने बाजार में जाकर उन पाँच रुपयों का एक जाल खरीद लिया और मछलियाँ पकड़ना शुरू कर दिया। वह धीरे-धीरे मछलियों का एक बड़ा व्यापारी बन गया। इधर जिस दिन से सेठ ने बिना सोचे-समझे उस लड़के को पाँच का नोट दिया था उसी दिन से उसके घर की सम्पत्ति समाप्त होने लग गयी। घर में अशांति के बादल मँडराने लगे......। इसलिए इसको हिंसादान में कहा गया है।

हिंसा के उपकरण रखने से हानि

(१) हिंसा के उपकरण रखने से मूल हानि तो यह है कि उन्हें देखकर हिंसक परिणाम उत्पन्न होते हैं जिससे पापास्रव होता है जो निश्चित रूप में दु:ख देने वाला है।

(२) हिंसा के उपकरण दूसरों के माँगने पर मजबूर होकर देने ही पड़ते हैं उनको

ले जाकर वे जो पाप करते हैं उसका छठा अंश हमें (रखने वाले को) मिलता ही है।

एक व्यक्ति को रात में खेत आदि में अकेले रहना पड़ता था। रात में १०-११ बजे खेत पर सोने के लिए जाना पड़ता था इसलिए उसने एक बन्दूक खरीदी। उसने अपनी बंदूक से कभी किसी भी जीव की हत्या नहीं की थी। एक दिन वह किसी जरूरी काम से अपनी खाट के नीचे बन्दूक छोड़कर चला गया। उसके नौकर ने बन्दूक उठाई और बिना सोचे-समझे फायर कर दिया। बन्दूक से निकली गोली एक व्यक्ति को जाकर लग गई। वह व्यक्ति वहीं मर गया। केस बना। पुलिस ने बन्दूक देखी तो वह (जिसकी बन्दूक थी) पकड़ा गया। उसको आजीवन कारावास की सजा सुना दी गई। यह है हिंसा के उपकरण रखने का दुष्परिणाम...।

ऐसे ही मोटर, कार, जीप आदि को किराए देने पर उससे एक्सिडेंट में किसी बड़े-बूढ़े, बच्चे आदि की हत्या हो जाने पर ड-इवर के साथ-साथ सेठ पर भी अवश्य आरोप लगता है।

अत: हिंसा के उपकरण कभी घर में नहीं रखने चाहिए।

हिंसक पशुओं को रखने से हानि

वास्तव में, इस जमाने में सज्जन-श्रेष्ठी, साहूकारों पर भी विश्वास नहीं होता तो पापी, माँसाहारी, दुष्ट परिणाम वाले जीवों पर, उनमें भी पशुओं पर कैसे विश्वास किया जा सकता है ? हिंसक पशु दूसरों का नुकसान करने के लिए ही रखे जाते हैं अथवा कभी-कभी मनोरंजन के लिए भी पाले जाते हैं। एक छोटे से गाँव में एक व्यक्ति ने एक कुत्ता पाल रखा था। वैसे उसके घर-खेत आदि में कहीं कुत्ते की आवश्यकता नहीं थी फिर भी वह मात्र मनोरंजन के लिए कुत्ता रखता था। एक साधु ने उसको बहुत समझाया कि तुम कुत्ता नहीं रखो, जानवरों का कोई विश्वास नहीं रहता है, कहीं कभी तुम्हें ही अथवा तुम्हारे बच्चों को ही इसने काट लिया तो परेशान हो जाओगे। उसने साधु को विश्वास दिलाया कि उसका कुत्ता बहुत अच्छा है वह कभी किसी को नहीं काट सकता। फिर मुझे तो और भी कभी नहीं काट सकता, क्योंकि मैं भी कुत्ते को बहुत चाहता हूँ तो कुत्ता भी मुझे बहुत चाहता है। थोड़े ही दिनों के बाद एक दिन वह कुत्ते को दूध रोटी खिला रहा था। अचानक एक मक्खी आकर उसमें गिर गई। उसने सोचा कहीं मक्खी कुत्ते के खाने में नहीं आ जावे इसलिए वह निकालने लगा। जैसे ही उसने मक्खी निकालने के लिए कटोरे में हाथ डाला कुत्ते ने झट से काट लिया तब उसको समझ में आया कि हिंसक जीवों को पालने का क्या फल होता है ?

एक मूर्ख लड़के ने तो तरह-तरह के साँप ही पाल रखे थे। वह साँपों के साथ बहुत खेलता था तो साँप भी उसके साथ बहुत प्रेम से खेलते थे। वह कई लोगों को साँप का खेल भी दिखाता था। एक दिन उसने खेल दिखाते-दिखाते साँप का मुँह पकड़ा तो उसके हाथ से मुँह थोड़ा जोर से दब गया। बस, साँप ने क्रोधित होकर इतनी जोर से डंक मारा कि वह वहीं एक मिनट में मृत्यु को प्राप्त हो गया।

दूसरी बात, व्यक्ति जैसी संगति में रहता है उसमें भी उसी प्रकार के संस्कार/विचार उत्पन्न होते हैं, उसकी क्रियाएँ भी धीरे-धीरे वैसी ही होने लगती हैं, उसके वचन व्यवहार में भी उसका प्रभाव आने लगता है। इन कुत्ते आदि के साथ रहने से हमारे बच्चों में भी वैसे ही संस्कार आने लगते हैं। कभी-कभी बच्चे उनका जूठा भोजन भी कर लेते हैं। उनके साथ खेलते/खाते हैं। इससे उनके शरीर में भी उसका प्रभाव आ सकता है, बीमारियाँ हो सकती हैं। तीसरी बात, हम जिस प्रकार के व्यक्ति को देखते हैं वैसे ही हमारे विचार उत्पन्न होते हैं। जैसे बिल्ली को देखकर 'यह चूहे खाती है, कबूतर, तोता आदि को पकड़कर मार डालती है। कुत्ता बिल्ली का शत्रु है। ये सूअर, बकरी, गाय के बछड़े आदि तक के पीछे पड़ जाएँ तो उनकी जान ले लेते हैं। इनमें स्व जाति विरोध नाम का सबसे बड़ा अवगुण होता है,' आदि-आदि विचार उत्पन्न होते हैं। हमारे अन्दर जो दुर्विचार उत्पन्न होते हैं, उन्हीं के अनुसार हमारे कर्मों का आस्रव होता है और उन्हीं के अनुसार हमारा जीवन ढलता है अत: अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए हिंसक पशुओं को पालने का खोटा काम कभी नहीं करना चाहिए।

हिंसा की वस्तुएँ नहीं देने से लाभ

हिंसा की वस्तुएँ देने से, रखने से पाप का बन्ध होता है और हिंसा के उपकरणों को नहीं देने से क्या लाभ होता है, उन्हें भी बताते हैं-

(१) हिंसा की वस्तुएँ नहीं देने से इन उपकरणों के निमित्त से होने वाले पापों

से आप बच जाते हैं।

(२) हिंसा के उपकरण नहीं देने वाले का मरण कभी किसी शस्त्र से नहीं होगा, वह अकालमरण से नहीं मरेगा क्योंकि उसने अकाल में मृत्यु के कारणभूत साधन किसी को नहीं दिये हैं।

सहारनपुर के लाला जम्बूप्रसादजी रईस बड़े दयालु और धर्मप्रेमी थे। एक बार एक अंग्रेज कलेक्टर ने शिकार खेलने के लिए उनसे हाथी माँगा। उस समय अंग्रेजों की बड़ी धाक चलती थी। फिर भी लालाजी ने स्पष्ट मना कर दिया कि ''सरकार ! मैं एक अहिंसक जैन हूँ। मैं शिकार खेलने के लिए किसी को अपना हाथी नहीं दे सकता।'' कलेक्टर ने लालाजी को कई प्रकार की धमकियाँ दीं लेकिन लालाजी पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो कलेक्टर ने गुस्से में कहा- ''लालाजी ! जानते हैं इसका परिणाम तुम्हारी जमींदारी के लिए क्या हो सकता है ?'' लालाजी विनम्र भाव से बोले, ''जी समझता हूँ कि कोई अपराध प्रमाणित हो जाने पर जमींदारी हाथ से चली जायेगी, इससे अधिक और क्या हो सकता है ?'' इस उत्तर को सुन वह अंग्रेज कलेक्टर बहुत प्रभावित हुआ। अहिंसा के प्रति लालाजी की निष्ठा देखकर उसने उनकी पीठ थपथपाई....।

उपर्युक्त दृष्टान्त को सुनकर कोई यह कहे कि किसी के माँगने पर भी यदि हमने अपने पास रखी वस्तु नहीं दी तो क्या हमारा आपसी व्यवहार नहीं टूट जायेगा? क्या हम कृपण नहीं कहलायेंगे? क्या अपने पास रखी चीज के लिए मना कर देने से हम लोभी नहीं कहलायेंगे? ऐसा करने में क्या हमारा गर्व नजर नहीं आयेगा ? ये सब हमारे मन की कल्पनाएँ हैं। पहली बात तो ऐसी वस्तु घर में रखनी ही नहीं चाहिए। फिर यदि अति आवश्यक वस्तु है, घर में रखनी ही पड़ती है तो जहाँ धर्म की बात है वहाँ इन सब बातों को नहीं देखा जाता है। धर्म करने वाले को तो लोग यद्वा-तद्वा जो कुछ भी कहने में नहीं चूकते हैं तो धर्मात्मा लोग सब कुछ सुनकर भी धर्म करने से नहीं चूकते हैं। लेकिन कहने वाले/बातें करने वालों को जब धर्म का मर्म समझ में आता है तब वे भी धर्म समझ जाते हैं और धार्मिकों की प्रशंसा करने लगते हैं।

सुखपाल सुखी हुआ

कौशाम्बी नगरी में सुखपाल एवं धनपाल दो सेठ रहते थे। एक दिन अभयघोष मुनिराज की प्रेरणा से दोनों ने हिंसा के उपकरण देने और बेचने का त्याग कर दिया। एक बार धनपाल के मित्र ने उससे तलवार माँगी। वह तलवार लेकर विवाह में गया तथा आते समय चोरी करने लगा। एक दिन कोतवाल ने उसका पीछा किया। वह मृत्यु के डर से तलवार छोड़कर भाग गया। तलवार धनपाल की थी इसलिए धनपाल पकड़ा गया, उसको देश निकाला दिया गया। वह हिंसा का उपकरण देने से मरकर नरक में गया। एक दिन किसी के माध्यम से राजा को सुखपाल की तलवार की जानकारी मिली। राजा ने सुखपाल को बुलाकर तलवार माँगी। सुखपाल ने कहा ''महाराज! आप उस तलवार का क्या करेंगे, वह तो काठ (लकड़ी) की है।'' राजा को उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। उसने अपने सिपाहियों को भेजकर सुखपाल के घर से तलवार मंगवा ली। लोहे की तलवार देखकर राजा ने क्रोधित होकर उसी तलवार से सुखपाल की जिह्वा काटने की आज्ञा दे दी। जब सेवकों ने उसकी जिह्वा पर वही तलवार चलाई तो वह काठ की हो गयी तथा आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। यह देख सबने सुखपाल की प्रशंसा की।

हिंसा का उपकरण नहीं देने से देवों ने सुखपाल की प्रशंसा की। अत: हिंसा के उपकरण किसी को नहीं देने चाहिए।

व्यवहार निभाने के लिए ऐसी वस्तुएँ देते समय सावधानियाँ

(१) बीड़ी, सिगरेट, चिलम, स्मेक आदि पीने के लिए कभी माचिस नहीं दें क्योंकि ये वस्तुएँ स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।

(२) अड़ोस-पड़ोस की महिलाएँ, बहू-बेटी अथवा कोई व्यक्ति भी यदि माचिस माँगने के लिए आवे तो थोड़ा सोचकर दें, कहीं यह नहीं हो कि आपकी माचिस से वह कहीं आग लगा दे, खुद को आग लगा ले या अन्य किसी को जला दे।

(३) सेलफास, पारद की गोली आदि कोई जहर (जो अनाज आदि में रखने के काम आते हैं) देते समय सावधान रहें...।

(४) चाकू, हँसिया, ब्लेड आदि देते समय सावधान रहें...।

(५) रस्सी, लाठी, मिट्टी का तेल...।

(६) सर्फ, साबुन, कूटना, ब्रुश, झाड़ू आदि बार-बार अर्थात् रोज-रोज नहीं

दें लेकिन कभी परिस्थिति में कोई माँगे तो मना नहीं करें, क्योंकि इन चीजों से तो हम भी हिंसा ही करते हैं फिर ये वस्तुएँ घरेलू कार्यों में काम आने वाली हैं।

(७) कुदेव के यहाँ अगरबत्ती जलाने के लिए माचिस देना भी एक प्रकार से हिंसादान ही है। क्योंकि मिथ्यात्व का सेवन तो सबसे बड़ा पाप है।

(८) जिन्हें हाथ में लेते ही परिणाम दुष्ट हो जाते हैं, किसी का घात करने के ही विचार आते हैं ऐसे तलवार, छुरी, भाला, बाण, धनुष, बन्दूक, तमंचा आदि आयुध देना हिंसादान है। फावड़ा, कुदाली, कुश, खुरपा, हल, मुद्‌गर, हथौड़ा, फरसा, कुल्हाड़ा, वसूला, करोंत, दांतला, दतीला, अग्नि, विष, बेड़ी, पिंजरा, जाल, जीव पकड़ने का यन्त्र, लाठी, घोंटा, चाबुक, चमड़े की वस्तुएँ भी हिंसा की सामग्री हैं।

बिल्ली, कुत्ता, सूअर, तीतर, बुलबुल, मुर्गा, मैना आदि हिंसक जीवों के पालन-पोषण की व्यवस्था करना भी हिंसादान में आता है।

नोट : सामान्य रूप से पशु-पक्षियों को खाने के लिए दाना डालने का स्थान बनवाना, पानी के पात्र रखवाना, दाने डलवाना आदि कार्य करना हिंसादान नहीं हैं।

उपसंहार

संसार में जो जैसा करता है उसको वैसा ही फल मिलता है। जो जिसके साथ जैसा करता है वह भी भविष्य में उसके साथ वैसा ही करता है। जिसको जिस कार्य में रुचि होती है उसको वैसा ही कुल, गति, शरीर एवं क्षमताएँ मिलती हैं। अहिंसा का पालन करने वाले को अर्थात् प्रत्येक प्राणी के हित की भावना करने वाले को कोई नहीं मारता है तभी तो ऋषि-मुनियों के चरणों में साँप, शेर, व्याघ्र, अष्टापद जैसे क्रूर प्राणी भी शान्ति से बैठे रहते हैं, उनका कुछ नहीं बिगाड़ते हैं। जो रास्ते के काँटे साफ करता है, रास्ते में फूल बिछाता है उसके लिए कोई क्यों काँटे बिछाएगा ? जो कभी किसी की मृत्यु के साधन अस्त्र-शस्त्र, विष आदि न बेचेगा, न देगा, न खरीदेगा उसको मारने के लिए कौन इन पदार्थों को खरीद-बेच सकता है। कहते हैं... जो सबकी रक्षा करता है वह स्वयं अपने आप रक्षित रहता है। वास्तव में, अपने जीवन को सुरक्षित रखने का, अकाल में मरण से बचने

का कितना सस्ता, सुन्दर उपाय है कि हम कभी हिंसादान अर्थात् हिंसा के उपकरण न गृहण करें, न बेचें न रखें। यही हिंसादान अनर्थदण्ड को जानने का फल है।

(३) अपध्यान

अप - खोटा, बुरा, **ध्यान**-विचार, चिन्तन, सोचना अर्थात् बुरे विचार करना किसी का बुरा सोचना ही अपध्यान है।

बीड़ी-सिगरेट पीने, जरदा, गुटखा, पॉउच, शराब आदि के सेवन के विचार भी अपध्यान ही हैं क्योंकि ये पापबन्ध के साथ-साथ धीरे-धीरे मरने के उपाय हैं।

अमुक के मकान-दुकान में आग लग जाय, उसके यहाँ चोरी हो जाय, उसके पुत्रादि का मरण हो जाय, उसका तिरस्कार होवे, उसकी बदनामी हो जावे आदि विचार करना अपध्यान है।

अपनी हैसियत को न देखकर भविष्य की कल्पनाएँ करना जैसे- मैं इतने मंजिल का मकान बनवाऊँगा, बगीचा लगाऊँगा, खेती खरीदूँगा, ऐसा-ऐसा व्यापार करूँगा आदि अपध्यान है।

प्रश्न - अपध्यान अनर्थदण्ड का एक भेद है। इसलिए हम भले ही बिना प्रयोजन के विचार नहीं करें लेकिन प्रयोजनभूत खोटे विचार तो कर सकते हैं जैसे- किसी ने हमारा बुरा किया है तो हम भी उसका बुरा करने की योजना बनायें, विचार करें तो क्या वह भी अपध्यान में आता है ?

उत्तर - किसी ने हमारा बुरा किया। उसके बारे में बुरे विचार करना भी अपध्यान ही है क्योंकि किसी के बुरा करने पर उसके लिए बुरे विचारों से भी तो पापों का ही बन्ध होता है। जिन विचारों से पाप का बन्ध हो वे विचार अच्छे तो नहीं हो सकते। वे तो जीव के लिए हानिकारक ही होते हैं। ऐसे विचारों को ही तो बैर/बदले के विचार कहा जाता है। बदला लेने के कटु विचारों से तो भव की परम्परा ही बढ़ती है। हमारे आचार्यों, सन्तों, भगवन्तों का कहना तो यह है कि हमें बुरा करने वालों के प्रति भी अच्छे विचार ही करने चाहिए, ताकि उसके परिणाम भी सुधर जायें। अथवा उसके भाव सुधरें या न सुधरें हम भाव बिगड़ने से बँधने वाले पापों से तो अवश्य बच ही जायेंगे।

दूसरी बात, किसी का बुरा विचारने मात्र से तो बुरा नहीं होता/ नहीं हो सकता। उसका अच्छा-बुरा होने में उसका अपना पूर्वोपार्जित पुण्य-पाप भी तो है। यदि उसके प्रबल पुण्य का उदय है तो हम कितने ही बुरे विचार करें, उसका बुरा करने के लिए कितने ही षड्यंत्र भी बना लें उसका कुछ नहीं बिगड़ सकता है। जैसे- दुर्योधन आदि कौरवों ने युधिष्ठिर आदि पाण्डवों को मारने, अपमानित करने, दु:खी करने के लिए इतने दुष्कृत किये जिनकी कोई गिनती नहीं है तो भी पाण्डवों का कुछ नहीं बिगड़ा। इसी प्रकार प्रद्युम्न को मारने के लिए माँ के कहने में आकर पिताजी ने (ये उनके सगे माता-पिता नहीं थे) १६ बार मौत के मुँह में धकेल दिया फिर भी प्रद्युम्न की मौत नहीं हुई प्रत्युत उसे सोलह विद्याएँ ही प्राप्त हुईं। आप सोचें, उन्हें बुरा विचार करने से लाभ ही क्या मिला? विचार करने मात्र से पाप ही तो मिला। इसलिए किसी के भी बारे में बुरे विचार नहीं करने चाहिए।

अपध्यान से नरक गया

स्वयंभूरमण समुद्र में एक हजार योजन लम्बा, पाँच सौ योजन चौड़ा ढ़ाई सौ योजन मोटा महामत्स्य रहता है जो भूख लगने पर समुद्र की मछलियाँ खाकर क्षुधा मिटाता है। उसी के कान अथवा आँख की पलकों में एक तन्दुल के बराबर अर्थात् बहुत छोटा मत्स्य (मछली) रहता है। वह इस महामत्स्य के कान का मल खाकर जीवित रहता है। जब महामत्स्य सो जाता है तो निद्रा में उसका मुँह खुल जाता है। उसके मुँह में से हजारों मछलियाँ पानी के साथ आती हैं और चली जाती हैं। उस समय उन मछलियों को देखकर वह तन्दुल मत्स्य सोचता है कि यह महामत्स्य कितना पागल एवं आलसी है। इतनी सारी मछलियाँ इसके मुँह से निकलती जा रही हैं फिर भी यह एक भी मछली को नहीं खा रहा है। इसके स्थान पर मैं होता तो सारी की सारी मछलियाँ खा जाता। वह अपनी जिन्दगी में हजारों बार इस प्रकार के विचार करता है लेकिन उसको जीवन में एक भी मछली खाने को नहीं मिलती। वह एक भी मछली नहीं खा पाता है बल्कि उस दुर्ध्यान के फल में वह मरकर सातवें नरक में अवश्य ही चला जाता है। वहाँ तैंतीस सागर तक दु:सह दु:खों को भोगता है।

तन्दुल मत्स्य के समान हम लोग भी कितने दुर्ध्यान करते हैं। हम लोगों को भी उन भावों का क्या फल मिलेगा, हम उन दु:खों को कैसे भोगेंगे, आदि विचार करके अपध्यान से बचना चाहिए।

दुर्विचार से पागल हो जाता है

कई लोग राजनीति में रुचि रखते हैं। रुचि के साथ-साथ अपनी विरोधी पार्टी वाले के प्रति खोटे भाव रखते हैं, यहाँ तक कि उनके मरने तक की प्रार्थनाएँ करने लगते हैं। इन विचारों की इतनी अति हो जाती है कि वे उनके पुतले जलाने लगते हैं। उनके प्रति मुर्दाबाद के नारे लगाते हैं; वे यह नहीं सोचते हैं कि इस प्रकार के विचार मात्र से क्या सामने वाले का नुकसान हो जायेगा ? आपकी प्रार्थना से यदि सामने वाला कोई एक मर भी गया, हार भी गया तो क्या हो जायेगा। आपका विरोधी दूसरा भी तो खड़ा हो सकता है। आप किस-किस को मारने की कामनाएँ करते रहेंगे। इससे अच्छा तो यह है कि आप अपने उत्थान की दिशा में ही सही पुरुषार्थ करें तो सम्भव है आपका कार्य सफल हो जावे। अन्यथा यह कहावत ही सिद्ध होगी कि जो दूसरों के लिए खाई खोदता है उसके लिए पहले ही कुआ खुदकर तैयार रहता है। आपकी भावना से सामने वाला तो मरा या नहीं मरा, हारा या नहीं हारा, आप स्वयं हार गये, आप स्वयं मौत के मुख में चले गये, क्या मतलब निकला? इससे तो अच्छा है आप सही पुरुषार्थ करें ताकि अपध्यान से उत्पन्न होने वाले पापों से भी बच सकें और कार्य भी सिद्ध कर सकें।

इसी प्रकार कई लोग धर्मायतनों के, समाज आदि के अध्यक्ष, मंत्री आदि बनने के लिए भी कितने आर्त्त-रौद्र भाव करते हैं। उनको भी पापों से बचकर धर्मायतनों की श्रद्धा का सही-सही फल प्राप्त करना चाहिए। धर्मायतनों की नि:स्वार्थ सेवा एवं समाज के उत्थान के कार्य करके अपने कुल का गौरव बढ़ाना चाहिए।

टी.वी. देखकर

टी.वी. मनोरंजन का एक साधन माना गया है। उस मनोरंजन के साधन को भी लोग टेंशन/अनावश्यक विचारों का कारण बना लेते हैं। जहाँ मनोरंजन करके आदमी अपने जीवन के बड़े-बड़े टेंशनों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है उसी को निमित्त बनाकर हम अनावश्यक विचारों में उलझ जाते हैं। ऐसा करके हम स्वयं अपनी आत्मा के साथ कितना अनर्थ कर लेते हैं। आज के लोग टी.वी. पर सबसे ज्यादा क्रिकेट का मैच देखते हैं। उस मैच में किसी एक दल को मुख्य बनाकर मन-ही-मन में उसके जीतने की तथा विपक्षी दल के हारने की कल्पनाएँ करते रहते

हैं, घंटों-घंटों हमें मैच देखने का इतना आनन्द नहीं आता, जितना आनन्द विपक्षी के हारने पर आता है। हम हर गेंद में क्रिकेट खेलने वाले अपने पक्ष के दल के जीतने का ही विचार करते रहते हैं। कभी-कभी तो हम उसको सलाह तक देने लगते हैं। हमें यह भी भान नहीं रहता है कि यह सब पर्दे पर दिख रहा है, साक्षात् नहीं। मैं जो सलाह दे रहा हूँ या देने का विचार कर रहा हूँ उसे क्रिकेटर नहीं सुन पायेगा। कभी-कभी तो अपने पक्ष के दल के जीतने पर हम फटाके चलाते हैं, पार्टी देते हैं, खुश होते हैं, इतना सब करने के बाद भी हमें उस क्रिकेटर से कितना सम्मान, कितना प्रेम, कितना अपनत्व मिला, कितना पैसा मिला ? आप सोचें, कुछ नहीं। मेरे अनुमान से तो वह आपको पहिचानता भी नहीं होगा। उसके तो आप जैसे हजारों-लाखों लोग होंगे। आप ने संभव है कभी परीक्षण किया होगा, नहीं किया हो तो कर सकते हैं। आप बड़े अरमान लेकर उस क्रिकेटर से, जिस पर आप फिदा हैं, अच्छी मूल्यवान गिफ्ट लेकर बड़ी उमंग से मिलने गये। आपने उसको गिफ्ट दी तो वह आपसे यही तो पूछता है कि आप कौन हैं, कहाँ से आ रहे हैं, किस उद्देश्य से आ रहे हैं ? मेरा तो आपसे कोई परिचय नहीं है अथवा उसने आपकी गिफ्ट की तरफ देखा ही नहीं और उठकर चला गया तो आपको कैसा लगेगा ? आप सोचें, आपने उसके हित में इतने सारे विचार/विकल्प किये, उसका क्या फल हुआ ? फालतू ही गये, बिना प्रयोजन पाप का आस्रव ही हुआ। इसी प्रकार हम टी.वी. देखते-देखते कितने अनावश्यक विकल्प करते हैं उन सबको समझकर अनावश्यक पापों/विकल्पों से बचें।

उपसंहार

हम लोग संसार में रहते हुए भोग-उपभोग की सामग्रियों को देखकर कितना अपध्यान करते हैं जिसकी कोई सीमा नहीं है। मुझे तो ऐसा लगता है कि संसार में सबसे ज्यादा अपध्यान मनुष्य करता होगा, क्योंकि उसके पास मन है, भोग की सामग्रियाँ हैं, उन सामग्रियों को यह भोग सकता है, उनको इकट्ठा करने का पुरुषार्थ करता है, पुरुषार्थी व्यक्ति ही अपध्यान कर सकता है और वही वास्तविकता को समझकर धर्म-ध्यान कर सकता है लेकिन अधिकांश लोग तो आर्त्तध्यान अपध्यान करते हुए ही देखे जाते हैं। कई लोग तो असमर्थ होकर भी दूसरे के प्रति बुरे विचार करते हुए अन्दर-ही-अन्दर घुटते रहते हैं, डिप्रेशन में आ जाते हैं, पागल हो जाते हैं। फलतः सामने वाले का तो कुछ नहीं बिगड़ता प्रत्युत् स्वयं का एवं स्वयं के

परिवार का जीवन दुःखमय बन जाता है। सच में यह संसारी प्राणी जो चीज देखता है उसी के बारे में सोचने लगता है जिसकी बात सुनता है उसी के बारे में विचार करने लगता है। उनको सोच-सोचकर भावी दुर्घटनाओं/बीमारियों की कल्पना करके अपने ही भावों के संप्रेषण अथवा मानसिकता से बीमार हो जाता है, दुःखी हो जाता है इसलिए महापुरुषों का कहना है कि व्यक्ति को वर्तमान में जीना चाहिए। कल जो होगा वह कल होगा, उसकी आशंका में हम आज का सुख क्यों खोयें ? हम आगे की कल्पना करके वर्तमान की सुख की घड़ियों को भी दुःख रूप बना लेते हैं, यह कोई बुद्धिमानी का कार्य तो नहीं है। एक महिला ने बताया-माताजी! एक दिन मैं शाम के समय छत पर बैठी थी वहाँ पर अचानक एक छिपकली आ गई और अंधेरा होते-होते वह चली भी गई। फिर भी मेरे मन में यह कल्पना बनी रही कि छिपकली वहाँ से गई नहीं है। मुझे रात भर ऐसा लगता रहा कि कहीं मेरे पैर पर छिपकली है, कहीं मेरी साड़ी पर छिपकली चल रही है। कहीं मेरे बिस्तर पर छिपकली... ऐसी कल्पना होते हुए लगने लगा कहीं छिपकली ने मुझे काट लिया तो जहर चढ़ जायेगा, कहीं मैं मर नहीं जाऊँ, अरे छिपकली का आना, शरीर पर चढ़ना तो बहुत अशुभ माना गया है, अब क्या होगा, कैसे होगा आदि आदि कल्पनाएँ करते हुए मुझे दो-ढ़ाई बजे तक नींद नहीं आई....। इसी प्रकार कई लोग जो ५ वर्ष, १०-२० वर्ष पहले हमारे साथ किसी ने कुछ गलत कर दिया था, कुछ गलत हो गया अथवा हम शरीर, धन, परिवार आदि से सुखी नहीं थे उन्हीं की याद करके दुःखी होते रहते हैं। एक महिला के पति को मरे १२वर्ष हो गये थे फिर भी वह रोती ही रहती थी और कहती रहती थी कि उन्होंने (पति ने) शादी के समय नियम लिया था कि मैं तुम्हें हमेशा अपने साथ रखूँगा। फिर छोड़कर क्यों चले गये...। क्या इस प्रकार रोते रहना उचित है, यह अपध्यान नहीं है क्या? क्या इसका फल दुर्गति नहीं होगी? अतः हम भविष्य की आकांक्षाएँ करके तथा भूतकाल की बीती हुई अच्छी-बुरी बातों को याद करके वर्तमान को दुःखी नहीं बनायें, अपध्यान से बचें एवं भविष्य को भी सुखी बनाने की कोशिश करें।

(४) दुःश्रुति

(१) दुः-खोटी, श्रुति-सुनना, खोटी श्रुति को दुःश्रुति कहते हैं।

(२) ऐसे शास्त्र, पुस्तकें पढ़ना-सुनना जिनको सुनकर वासनाएँ जागृत हों।

(३) जिन पुस्तकों को पढ़ने से भोजन की नाना प्रकार की वेराइटियाँ बनाने-खाने की भावनाएँ उत्पन्न हों।

(४) जिन कथाओं को सुनकर काम-भोग में प्रवृत्ति हो।

(५) जिन पुस्तकों में पुत्र-उत्पत्ति, पति-पत्नी विषयक भोगों की बातें कही गई हों वे कुशास्त्र हैं उनको पढ़ना-सुनना दुःश्रुति है।

(६) जिनमें सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, शिल्प, कला आदि की विधि कही गई हो।

(७) जिनमें स्त्री के सौन्दर्य-शृंगार, वेष-भूषा, सजावट आदि की विधि कही गई हो ऐसी तथा कोकशास्त्र, कुकिंग कोर्स, बेकिंग कोर्स की पुस्तकें पढ़ना, सुनना दुःश्रुति अनर्थदण्ड है।

(८) मिथ्यात्व को पुष्ट करने वाले अर्थात् जिन गृन्थों में सरागी देवों को भगवान कहा गया है, वस्त्र, आरम्भ, परिगृह आदि से युक्त को भी गुरु स्वीकार किया गया है उन्हें पढ़ना दुःश्रुति है। जिनमें हिंसा में भी धर्म माना गया है, अपनी जिह्वा की लोलुपता के लिए बलि आदि को धर्म कहा गया है, इन सबको पढ़ना भी दुःश्रुति है।

(९) ऐसे गृन्थों का प्रमाण देकर सत्यधर्म की पुष्टि करना भी दुःश्रुति ही है क्योंकि सन्दर्भ को सुनकर उन गृन्थों के प्रति आकर्षण बढ़ता है। उनको पढ़ने-सुनने की भावना उत्पन्न होती है। उनको पढ़ने से मिथ्यात्व, हिंसा आदि की पुष्टि होती है।

आरम्भ, परिगृह, मिथ्यात्व, द्वेष, राग, अहंकार और काम के द्वारा चित्त को कलुषित करने वाले शास्त्रों को सुनना दुःश्रुति नाम का अनर्थदण्ड है।

प्रश्न - क्या हर प्रकार की पुस्तक पढ़ना दुःश्रुति में आता है ?

उत्तर - नहीं, यदि हमारा लक्ष्य सही है तो भोग सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ना भी दुःश्रुति में नहीं आता जैसे-

(१) किसी की सेवा के लिए बीमार व्यक्ति को सुपाच्य, हल्का, देखने में अच्छा लगे अर्थात् देखते ही खाने का मन हो जावे ऐसा भोजन बनाना सीखने के लिए भोजन बनाने की पुस्तकें पढ़ना-पढ़ाना, सुनना दुःश्रुति में नहीं आता। जैसे - किसी को खिचड़ी बनाना नहीं आता है, खिचड़ी की दाल कच्ची ही रह जाती है अथवा कोई हृदयरोगी है उसको घी अधिक नहीं खिला सकते हैं तो उसके लिए उचित इडली, डोसा, हंडोवा आदि बनाना सीखना अनर्थदण्ड/दुःश्रुति में नहीं आता है।

(२) अपने पति और बच्चों को होटल में जाने से बचाने के उद्देश्य से अच्छी सब्जी, कचौड़ी, समोसा, नास्ता आदि मनभावन बनाने के लिए कुकिंग कोर्स करना दुःश्रुति नहीं है, क्योंकि इन भोगों की वस्तुएँ सीखने का उद्देश्य अपने पति-बच्चों को होटल में अभक्ष्य भोजन करने से तथा उनसे उत्पन्न होने वाले पापों से बचाने का है।

अपने सास-ससुर आदि वृद्ध व्यक्तियों को संतुष्ट रखने के लिए अर्थात् वृद्ध लोग न किसी पार्टी में जाते हैं, न पंगत में ही भोजन करने जाते हैं और न इधर-उधर यद्वा-तद्वा खाते हैं उनको भी हम कभी-कभी ऐसी (पंगत आदि में बनने वाली) वस्तुओं को घर पर शुद्ध बनाकर खिला दें ताकि हमारे घर के बुजुर्ग संतुष्ट रहें तथा उनका हमारा प्रेम हमेशा वृद्धि को प्राप्त होता रहे। इस उद्देश्य से भी यदि कोई सब्जी, मिठाई आदि वस्तुएँ बनाने की विधि सीखने वाली पुस्तकें पढ़ता है, टीवी पर खाना-खजाना आदि कार्यक्रम देखता है तो दुःश्रुति में नहीं आता है क्योंकि इसमें हमारा परिणाम भोगों के प्रति आकर्षित नहीं है, भोगवृद्धि का भाव नहीं है।

इसी प्रकार वैयावृत्य करने के लिए अथवा अभक्ष्य औषधि से बचने के लिए दवाइयों की पुस्तकें पढ़ना भी दुःश्रुति नहीं है।

आलू-प्याज आदि अभक्ष्य पदार्थों से बचने के लिए कच्चे केले के पराठे, टिकिया, कोफ्ते, केलाबंडा आदि बनाने की विधि सीखना अथवा सिखाना दुःश्रुति नहीं है।

माँसाहार आदि से बचने के लिए सौन्दर्य प्रसाधन की सामग्री के उत्पाद अथवा परिचय कराने वाली पुस्तकें पढ़ना, कैसेट-सी.डी. आदि देखना-सुनना दुःश्रुति नहीं है।

एक लड़का शादी होने के बाद भी भोगों से विरक्त ही रहता था। उसकी माँ एवं काका ने मिलकर उसको भोग का उपदेश दिया। उसको भोग में लगाने

के लिए वेश्या के यहाँ ले गये, वहाँ जुआ खेलने की प्रेरणा...। फलत: वेश्या के साथ भोग में ऐसा फँस गया कि उसने अपने घर से ६० करोड़ दीनारों का धन मंगवाकर वेश्या को अर्पित कर दिया। वह १२ वर्ष तक वेश्या के घर से बाहर तक नहीं आया। यद्यपि लड़का जानता था कि जुआ आदि खेलने की बातें नहीं सुननी चाहिए फिर भी उसने सुनी उसका फल यह हुआ कि उसने अपने जीवन के बारह वर्ष मात्र पाप-सेवन में गँवा दिये। घर की अपार सम्पदा को नष्ट कर दिया और जन-जन के बीच में अयश को प्राप्त किया। आज तक उसका नाम 'वेश्यागमन' नामक व्यसन में प्रसिद्ध है।

इसी प्रकार माँसाहारी दुष्ट परिणामी लोगों के द्वारा लिख दिया गया कि 'अजैर्यष्टव्यं' बकरे के द्वारा हवन करना चाहिए। जबकि उसका अर्थ 'पुराने जौ (धान) से हवन करना चाहिए' होता है। इसको सुनकर लोगों ने बलि देना प्रारम्भ कर दिया। बलि के बहाने से मांस खाना प्रारम्भ कर दिया। भोले लोगों ने हिंसात्मक ग्रन्थों को पढ़-सुनकर मांस खाने रूप ऐसा दुष्कृत कर लिया जिसका फल केवल दुर्गतिगमन है। भवों-भवों तक जिन जीवों को मारा, जिनका माँस खाया उनके द्वारा मृत्यु को प्राप्त होना, अनन्त-अनन्त दु:खों को सहन करना। आप सोचें दु:श्रुति का कितना दुष्फल होता है, ऐसे दुष्फल को जानकर भी यदि कोई मूर्ख दु:श्रुति अनर्थदण्ड करता हो तो उसकी गति क्या होगी ? भगवान जाने। अत: इहभव और परभव को सुधारने के लिए दु:श्रुति अवश्य ही छोड़ देनी चाहिए।

उपसंहार

दु:श्रुति अनर्थदण्ड करने वाले स्वयं भी दु:खी होते हैं और अपने साथ वालों को भी दु:खी करते हैं। संसारी जीवों को सामान्य रूप से भोगों के प्रति ही आकर्षण रहता है। उसको उन्हीं पुस्तकों को पढ़ने में ज्यादा आनन्द आता है जिन पुस्तकों में भोगों को पुष्ट करने वाली बातें होती हैं। उन्हीं बातों को सुनने में आनन्द आता है जो उसके लौकिक स्वार्थ की पूर्ति करने वाली होती हैं अथवा उसके मन को अच्छी लगती हैं। जब चार व्यक्ति बैठकर निन्दा-बुराई की बातें शुरू कर देते हैं तो घण्टों तक बातें खतम नहीं होती हैं और यदि हम किसी की प्रशंसा, किसी के गुणानुवादन करने की बात छेड़ दें तो मन नहीं लगता है। यदि किसी धर्मगून्थ का अध्ययन करें तो एक-दो पृष्ठ पढ़ने में ही थक जाते हैं और यदि उपन्यास पढ़ने बैठ जावें तो थकने की बात तो बहुत दूर जब तक उपन्यास पूरा न हो जावे

आँखों की पलकें तक नहीं झपकतीं क्योंकि धर्म-गून्थ में तो इन्द्रिय-विषयों को छोड़ने की ही बातें हैं। जितने भी जीवों ने नरक-निगोद की यात्रा की है, कैंसर, टी.बी. आदि भयंकर रोगों से गृसित हुए हैं उन सबका मूल कारण विषयभोग ही है। अत: विषयभोगों की प्रेरणा देने वाला स्वयं सुखी कैसे हो सकता है ? यही सब विचार करके दु:श्रुति से बहुत दूर रहकर स्वयं एवं अपने परिचित व्यक्तियों को पापों से बचाना चाहिए।

(५) प्रमादचर्या

प्रमाद का अर्थ है अच्छे अर्थात् आत्मकल्याणकारी कार्यों में आलस होना, उत्साह नहीं होना। चर्या का अर्थ है = क्रियाएँ। आत्मा का भला/हित करने वाले कार्यों में आलस करना प्रमादचर्या है अथवा प्रमाद का अर्थ यद्वा-तद्वा करना या अपने हिताहित के बारे में कुछ न सोचकर कुछ भी करते रहना प्रमादचर्या है।

बिना प्रयोजन पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि का व अन्य अचेतन पदार्थों का छेदन-भेदन करना, तोड़ना, मरोड़ना, मसलना, पटकना आदि प्रमादचर्या अनर्थदण्ड है। बिना प्रयोजन घूमना, दौड़ना, चलना-फिरना, इधर से उधर होते रहना भी अनर्थदण्ड है। लोक में आलसी को भी प्रमादी कहा जाता है, वह भी सही है। जो कमाता नहीं है वह भी प्रमादी है। समय पर भोजन न करना, सोना, आवश्यक कार्य नहीं करना भी एक प्रकार से प्रमाद है क्योंकि ऐसा करने से अनावश्यक तकलीफें भोगनी पड़ती हैं। समय पर भोजन आदि नहीं करने से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। स्वास्थ्य बिगड़ने से अभक्ष्य औषधि आदि का सेवन करना पड़ता है जिससे आर्थिक हानि भी होती है और पाप का बन्ध भी होता है-

पाँच इन्द्रियों के वशीभूत होकर विवेक ही भूल जाना प्रमादचर्या है।

स्नेह के कारण खाना-पीना ही भूल जाना, अपने आवश्यक नियमों का भी ध्यान नहीं रख पाना भारी प्रमाद है। मुख्य रूप से प्रमाद पन्द्रह प्रकार के कहे गये हैं –

५ इन्द्रिय प्रमाद, ४ विकथा प्रमाद, ४ कषाय प्रमाद, निद्रा तथा स्नेह प्रमाद।

पाँच इन्द्रियों के वशीभूत होकर आत्म-हितकारी बात भूल जाना इन्द्रिय प्रमाद है। जैसे- भगवान के दर्शन करने जा रहे थे, रास्ते में कोमल, पतली, मुलायम, ताजा सब्जी देखकर खरीदने लग जाना। इसमें यदि ५ मिनट भी लग गये और

इतनी देर में मंदिर बन्द हो गया तो क्या आप दर्शन कर पायेंगे? यदि मुनिराज को आहार देने जाते समय इस काम में लग गये तो क्या आहार पूरा नहीं हो जायेगा...।

इसी प्रकार मीठे आम, अमरूद, सीताफल आदि खरीदने में लग जाना **रसना इन्द्रिय प्रमाद** है। पाउडर लगाने में लग जाना, इत्र, फुलेल, पुष्प आदि खुशबू के चक्कर में पड़कर धार्मिक कार्य, जो आत्मा का कल्याण करने वाला था, उसे भूल जाना या उसे करने में उत्साह नहीं होना **घ्राण इन्द्रिय प्रमाद** है।

पूजन करते-करते रामायण-महाभारत और विशेष कार्यक्रम का समय हो जाने पर उन्हें छोड़कर पहले टी.वी देखने चले जाना या मंदिर के बाहर लगी हुई पत्रिकाओं में फोटो देखने लग जाना, बोर्ड पर लिखी हुई सूचना पढ़ने में लग जाना आदि **चक्षु इन्द्रिय प्रमाद** है।

प्रवचन, उपदेश आदि अच्छे कार्य को करने के लिए तैयार होकर भी किसी नेता के भाषण, टी.वी. पर न्यूज सुनने आदि में लग जाना **कर्ण इन्द्रिय प्रमाद** है।

किसी के कुछ कह देने पर अथवा अपने कार्य की सिद्धि नहीं होने पर मंदिर जाना, पूजन करना, स्वाध्याय करना, उपदेश सुनने जाना आदि धार्मिक कार्यों को छोड़ देना या उनमें उत्साह नहीं रखना **क्रोध कषाय** प्रमाद है, इसी प्रकार मान आदि भी जानने चाहिए।

देश के नेताओं, राजा-महाराजा आदि ऐतिहासिक पुरुषों की बातें करने में मन्दिर जाना भी भूल जाना **देशकथा प्रमाद** है। इसी प्रकार अन्य विकथा प्रमाद भी जानने चाहिए। ऐसे ही **निद्रा** एवं **स्नेह प्रमाद** है।

हमारे दैनिक जीवन में हम अनजाने कितने-कितने और कैसे-कैसे कार्य कर लेते हैं जिनकी कल्पना ही नहीं की जा सकती है। यद्यपि लौकिक जन उनको गलत नहीं मानते हैं। क्योंकि वे स्वयं पद-पद पर ऐसे ही कार्य करते रहते हैं। लेकिन यदि सही दृष्टि से सोचा जावे तो हमारे जीवन में अधिकांश कार्य प्रमाद के वशीभूत ही होते हैं। जहाँ प्रमाद होता है वहाँ पापास्रव तो नियम से होता ही है। पापास्रव से दुर्गति और दुस्सह दुःखों को भोगना ही होता है। इसीलिए हमारे ऋषि-मुनियों ने प्रमादवृत्ति से बचना ही एक प्रकार से धर्म-आत्मकल्याण कहा है। ये प्रमाद वृत्तियाँ अनेक प्रकार की कही गई हैं-

(१) जल सम्बन्धी (२) विचार सम्बन्धी (३) बोलते समय (४) वस्तुओं के संगृह में (५) भोजन में (६) अग्नि सम्बन्धी (७) भोगोपभोग की सामग्री में (८) वनस्पति सम्बन्धी (९) सामान्य अनर्थदण्ड।

जल सम्बन्धी प्रमाद वृत्तियाँ

संसार के प्रत्येक प्राणी को अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए यदि किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ती है तो वह पदार्थ है **पानी**। सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक लगभग प्रत्येक कार्य में हमें पानी की आवश्यकता पड़ती है। वास्तव में, संसार की सभी चीजों के बिना अर्थात् रोटी, दाल, सब्जी, घी, दूध, नमक, कपड़े, बिस्तर आदि के बिना भी यह संसारी प्राणी जीवित रह सकता है, सैंकड़ों वर्षों तक जी सकता है लेकिन पानी के बिना तो मनुष्यों की बात तो बहुत दूर छोटे से छोटा प्राणी भी नहीं जी सकता। यहाँ तक कि एक छोटा-सा अंकुर भी पानी के बिना विकसित नहीं हो सकता है। हम उसी अत्यावश्यक पानी का सही उपयोग नहीं कर पाते हैं, उसी का हम दुरुपयोग कर लेते हैं, यह बड़े दुःख तथा आश्चर्य की बात है।

आज हमारे देश में सबसे ज्यादा कमी है तो पानी की। कई बार गर्मी के दिनों में सरकार को सामाजिक स्तर पर **जल बचाओ** योजनाएँ चलानी पड़ती हैं। कई स्थानों पर कपड़े धोने, घर की सफाई करने के लिए पानी नहीं मिलता है। एक दिन एक महिला ने बताया- ''माताजी ! हमारे गाँव में कुआ नहीं है इसलिए एकासन करने की अपेक्षा तो उपवास कर लेना ही अच्छा, सुविधाजनक लगता है। हमारे घर में पानी की इतनी कमी है कि मैं सात-आठ दिन के कपड़े इकट्ठे करके पास वाले गाँव में (जहाँ मेरा पीहर है) लेकर जाती हूँ वहीं से कपड़े धोकर लाती हूँ। मैंने पूछा - फिर पीने के लिए...। उसने कहा- हमारे गाँव से थोड़ी दूर एक कुआ है जो कभी सूखता नहीं है वहाँ दो-चार घंटे लाइन में खड़ी रहती हूँ तब एक-दो घड़े पानी मिल जाता है, इसी से अपना काम चला लेते हैं। कई स्थानों अर्थात् रेगिस्तान के कई भागों में पानी के बिना मनुष्य-पशु तड़प-तड़प कर मर जाते हैं जबकि आज पानी को भी एकस्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की इतनी सुविधाएँ हो चुकी हैं। आज तो पानी वाले प्रदेशों में भी पानी की कमी अनुभव में आने लगी है। आप स्वयं जानते हैं कि आपके घर पर भी गर्मी के दिनों में जब दो-तीन दिन के बाद या सात-आठ दिन बाद नल आते हैं तब आपको कैसा

लगता है? सच में, हमारे देश में जिसकी सबसे ज्यादा कमी है उसी का हम सबसे ज्यादा दुरुपयोग करते हैं या यूँ कह दीजिए कि हमारे दुरुपयोग करने से ही देश में पानी की कमी है और यदि हमारे देश की जनता ने अर्थात् हमने पानी का सदुपयोग नहीं किया तो पानी की कमी बढ़ते-बढ़ते भविष्य कैसा होगा? यह एक विचारणीय विषय है।

पानी का दुरुपयोग कहाँ, कैसे?

क्या आपने कभी सोचा है कि पानी का मूल्य क्या है ? आपके हाथ से यदि कभी घी की दो-चार बूँदें जमीन में गिर गई होंगी तो आपने उनको अवश्य उठा लिया होगा। उस उठाये हुए घी को भले ही आपने खाने के काम में नहीं लिया होगा तो भी उठाकर सिर, हाथ-पैरों में अवश्य पौंछ लिया होगा। आपके हाथ से घी की एक कटोरी या डिब्बा लुढ़क जाये तो आप क्या करते हैं, जल्दी-जल्दी उठा लेते हैं, अच्छी तरह से पौंछ लेते हैं और पूरे दिन उसका पश्चाताप भी करते रहते हैं। आप दु:खी होते हैं कि हाय, मेरे घर में आज इतना नुकसान हो गया...। आप शायद दो-चार लोगों के सामने अपना दु:ख व्यक्त भी करते होंगे। क्योंकि आपको घी के मूल्य का पता है, आप घी को मूल्यवान, महँगी-चीज समझते हैं लेकिन कभी आपके हाथ से एक घड़ा पानी लुढ़क गया हो, गिर गया हो तो आपको कितना दु:ख होता है ? आपको कितना पश्चाताप होता है। शायद बिल्कुल दु:ख नहीं होता है क्योंकि आपकी दृष्टि में पानी का कोई मूल्य नहीं है जबकि घी की अपेक्षा पानी लुढ़कने से ज्यादा हिंसा हुई, ज्यादा पाप हुआ, अमूल्य वस्तु नष्ट हुई। क्या आपने उस पाप का कभी प्रायश्चित्त किया, कभी उसका दु:ख किया, कभी भगवान के सामने उसकी आलोचना की ? नहीं की, क्योंकि आपकी दृष्टि में पानी कुछ भी नहीं है, पानी का पैसा नहीं लगता लेकिन आप यदि थोड़ा गहराई से विचार करें तो आपको स्वयं अनुभव में आयेगा कि पानी जितना आवश्यक है उतना घी नहीं बल्कि यूँ कहना चाहिए कि पानी जीवन जीने के लिए अति आवश्यक वस्तु है या समझना चाहिए कि पानी प्राणी के प्राण हैं क्योंकि पानी के बिना प्राणों की रक्षा नहीं हो सकती है। जिस प्रकार अंकुर, पौधा, पत्ते, फल-फूल, वृक्ष आदि के लिए बीज आवश्यक है उसी प्रकार पानी भी अत्यावश्यक है।

पानी के दुरुपयोग और उसकी व्यर्थ बरबादी के विषय में हम अनेक प्रकार से विचार कर सकते हैं। हमारे दैनिक जीवन में लगभग चौबीस घंटे पानी की आवश्यकता है क्योंकि पानी के बिना कहीं पर भी काम नहीं चलता है चाहे लघुशंका जाना हो या दीर्घशंका, भोजन बनाना हो या भोजन करना, नहाना हो या कपड़े धोने हों, घर की सफाई करनी हो या मंजन करना हो, प्रत्येक कार्य में पानी सर्वप्रथम आवश्यक है। साबुन नहीं हो, सर्फ नहीं हो, पेस्ट नहीं हो, नमक-मिर्च, घी-तैल नहीं हो तो काम चल सकता है लेकिन पानी के बिना कहीं पर भी काम नहीं चल सकता। इसलिए उन आवश्यक कार्यों में हम पानी का कितना उपयोग करते हैं, कितना दुरुपयोग करते हैं और कितना व्यर्थ ही काम में लेते हैं, इन सबका विवेचन यहाँ नीचे लिखे कुछ बिन्दुओं के आधार से किया जाता है-

(१) मंजन के समय (२) नहाते समय (३) टंकी भरते समय (४) हैण्डपम्प से पानी भरते समय (४) पानी पीते समय (६) आँगन धोते समय (७) कपड़े धोते समय (८) मंदिर में पैर धोते समय (९) अनावश्यक प्रयोग (१०) बर्तन साफ करते समय (११) नल में टोंटी नहीं लगाने से।

मंजन करते समय

आज हम कुल्ला करने के लिए एक जग पानी लेकर बैठते हैं। कई लोग तो नल की टोंटी चालू करके मंजन लेने जाते हैं, ब्रूश उठाते हैं। कई लोग तो छोटा घड़ा लेकर मंजन करते हैं। मंजन करना लौकिक दृष्टि से आवश्यक है, स्वास्थ्य की दृष्टि से नहीं। आज कई डॉक्टर बासी मुँह अर्थात् बिना कुल्ला किये पानी पीने की सलाह देते हैं। उनके विचार से रात-भर के बासी मुँह के थूक में इतनी प्रतिरोधक और रोगों को नष्ट करने की शक्ति होती है जो अच्छी- अच्छी दवाइयों में नहीं होती। उसको हम कुल्ला मंजन करके व्यर्थ ही नष्ट कर देते हैं। यह अनुभव में भी आता है कि जब किसी को दाद हो जाती है तो बासी थूक लगाने से जितनी जल्दी ठीक हो जाती है उतनी जल्दी दवाई से नहीं होती है। शायद जैन साधुओं के अदन्तधावन मूलगुण का एक कारण यह भी हो सकता है अर्थात् जैन साधु को भोजन के पहले कुल्ला करने का भी निषेध किया गया है। वास्तव में, मंजन तो भोजन के बाद ही करना चाहिए ताकि भोजन के जो कण दाँतों में फँस गये हों वे निकल जावें। यदि दाँत में फँसे कण नहीं निकलेंगे तो वहीं पड़े-पड़े सड़ते रहेंगे, जिससे दाँत में कीड़े लग जायेंगे, दाँत खराब हो जायेंगे। अस्तु, फिर भी लोक में मंजन करने की परम्परा है। आप मंजन करते हैं, करें, लेकिन जहाँ एक

गिलास पानी से भी अच्छी तरह मंजन किया जा सकता है वहाँ एक जग पानी लेने की क्या आवश्यकता है? फिर यह मुँह तो कितने ही पानी से कुल्ला कर लो पवित्र नहीं हो सकता, जो स्वभाव से ही अपवित्र हो वह पवित्र हो भी कैसे सकता है? अत: मंजन करते समय विवेकपूर्वक पानी का उपयोग करें।

नोट : यदि किसी डॉक्टर वैद्य की सलाह से १५-२० बार कुल्ला करने हों तो अनर्थदण्ड में नहीं आयेगा क्योंकि वह तो एक प्रकार से औषधि है।

नहाते समय

जब हम नहाते हैं तो बाल्टी भर पानी लेकर मग्गा से धड़ा-धड़ शरीर पर डालते जाते हैं जिससे हमारा आधा शरीर ही गीला हो पाता है; पीठ, कूल्हे आदि तो सूखे ही रह जाते हैं। कई लोग तो दो-तीन बाल्टियों से नहाते हैं फिर भी जिस वस्त्र को पहन कर वे नहा रहे हैं वो वस्त्र ही गीला नहीं हो पाता है तो शरीर के अंगोपांग कैसे साफ हुए होंगे, कहा नहीं जा सकता है। यदि आप थोड़ा-थोड़ा पानी डालकर हाथ फेरते अथवा किसी तौलिए/कपड़े से शरीर को रगड़ते, फिर दो-चार मग्गा पानी डाल देते तो शायद आपका शरीर अच्छी तरह साफ हो जाता और ऐसे स्नान से आप स्वस्थ भी रहते। लेकिन...। फिर आप उस दिन की सोचें जिस दिन आप और आपकी पत्नी या मम्मी या बहिन रात में दो बजे उठकर हैण्डपम्प चलाकर पानी लाये हैं, उस दिन आप किस प्रकार पानी का उपयोग करते हैं, आप कितने पानी में अच्छी तरह से नहा लेते हैं। कई लोग तो नल की टोंटी खोलकर उसके नीचे ही बैठकर नहाते हैं, कितनी देर तक नहाते रहते हैं भगवान जाने, उनके इस प्रकार अविवेक से, बिना छने पानी से नहाने से उनका कितना शरीर साफ होता होगा, वे कितने सफाई से रहते होंगे और उनको कितना पापास्रव होता होगा। वे स्वयं जानें।

मेरे कहने का आशय यह नहीं है कि आप 'कौआ स्नान' करें लेकिन स्नान करते समय विवेक अवश्य रखें। विवेक रखने से आप स्नान भी कर लेंगे और पाप से भी बच जायेंगे। और यदि आपको ऐसा लगे कि मैं स्नान भी कर लूँ तथा मुझे बिल्कुल पाप नहीं लगे तो आप स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहन कर भगवान का अभिषेक करें, भगवान के चरण स्पर्श कर लें, भगवान की पूजन करें, साधुओं को आहार दें, स्वाध्याय करें, आपका पाप धुल जायेगा।

कई लोग नहाते समय जब ज्यादा पानी दिखता है तो वे पहले एक बाल्टी या एक घड़ा पानी अपने शरीर पर ड़ालते हैं फिर साबुन लगाते हैं और पुन: बाल्टी भर पानी डाल लेते हैं। दो-तीन बाल्टी पानी डाल लेने पर भी उनका शरीर साफ नहीं होता। तत्काल में तो शरीर साफ दिखने लगता है लेकिन जब शरीर सूखता है तो उनके चेहरे, गले हाथ आदि पर ऐसा लगता है जैसे पाउडर लगाकर आये हों, परन्तु वास्तव में उनके चेहरे पर दिखने वाला पाउडर न तो पसीना सोखता है और न ही सुन्दर दिखता है क्योंकि आपने साबुन भी लगा लिया, पानी भी डाल दिया, लेकिन हाथ से रगड़कर साबुन को धोया तो था ही नहीं। फलत: उस साबुन की सफेदी से चमड़ी खिंचने लगती है। फटी-फटी हो जाती है। सबसे अच्छा तो यह है कि आप बिना साबुन से नहाकर तौलिए से साफ रगड़कर पौंछ लें। आपके शरीर के पूरे रोमछिद्र खुल जायेंगे। आप स्वस्थ रहेंगे, पाप से बचेंगे और आर्थिक व्यय भी नहीं होगा।

टंकी भरते समय

कई लोग बोरिंग चलाकर टंकी में पानी भरते हैं तो स्विच चालू करके अपने काम में लग जाते हैं। जब टंकी पूरी भर जाती है पानी ऊपर से होकर बाहर आकर नीचे गिरने लगता है तब समझ में आता है कि टंकी भर चुकी है। आप कितनी ही जल्दी-जल्दी जाकर स्विच बन्द करें, २-४ बाल्टी पानी तो बह ही जायेगा। यदि थोड़ा अनुमान रखते कि इतने मिनट में टंकी भर जाती है उसके २-४ मिनट पहले ही स्विच बन्द कर देते तो आपके प्रमाद से २-४ बाल्टी पानी फालतू नहीं जाता। यदि टंकी खाली रह भी जाती तो आप फिर से भर सकते हैं। सामाजिक संस्थाओं में इस बात का अधिकतर प्रमाद देखा जाता है। आप यदि सक्षम हैं तो वहाँ भी ध्यान दे सकते हैं। कई बार टंकी में से पानी रिसने लगता है, चौबीस घंटे जब तक टंकी में पानी रहता है बूँद-बूँद करके या पतली धार के रूप में बहता ही रहता है। आप सोचें, पूरे दिन में कितना पानी बह जाता होगा। उस सबका पाप किसको लगेगा? आपके घर की है तो पूरा पाप आपको अर्थात् घर के संचालक (पति-पत्नी) दोनों को लगता है और कुछ अंशों में घर के सभी समझदार लोगों को लगता है। यदि सामाजिक है तो धर्मशाला, मंदिर के अध्यक्ष, मंत्री, व्यवस्थापक को सबसे ज्यादा पाप लगता है और प्रभारी धर्मात्माओं को भी कुछ अंशों में पाप लगता ही है। कभी-कभी टोंटी ढीली हो जाने से भी बूँद-बूँद पानी झरता रहता

है। पैसे के लोभ में अथवा प्रमाद के कारण टोंटी नहीं बदलवाते हैं। सोचते रहते हैं, अरे! कब तक टोटियाँ बदलवाते रहेंगे....। एक दिन एक लड़की ने कहा- माताजी! मैं अपने मामा के यहाँ गयी थी। उनके यहाँ एक नल की टोंटी में से पानी की धार बह रही थी। मैंने कहा- मामी, इसकी टोंटी बदलवा दो, इतना पानी फालतू बहता रहता है। मामा-मामी ने कहा- अहो ! तुम बड़ी धर्मात्मा हो, हमारे यहाँ ऐसा धर्म-कर्म नहीं चलता, रहने दो अपनी बातें। मैंने उनको बहुत समझाया लेकिन उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ऐसे भी लोग होते हैं जो जान-बूझकर पाप करते हैं, पाप से डरने की भावना ही नहीं करते और पाप करके आनन्द भी मानते हैं, आखिर उनकी क्या गति होगी, उन्हें कैसे दुःख उठाने पड़ेंगे...। पानी झरने से एक पाप और होता रहता है। जहाँ पानी गिरता है वहाँ लगातार पानी गिरने से काई लग जाती है, उस काई में अनन्त जीव उत्पन्न होते रहते हैं, मरते रहते हैं। थोड़ा-सा प्रमाद छोड़कर हम इतने बड़े पाप से बच सकते हैं। अत: थोड़ा प्रमाद छोड़कर पापों से बचें। आपके घर की किसी टोंटी में से एक-एक बूँद पानी भी गिर रहा हो तो आप तत्काल उसे बदलवा दें आपको अहिंसा का महान् फल मिलेगा।

हैण्डपम्प से पानी भरते समय

जब हम हैण्डपम्प पर पानी भरने जाते हैं घड़ा पूरा भरने लगता है तब हम हैण्डपम्प चलाना बन्द करते हैं। हैण्डपम्प चलाना बन्द करने के बाद भी एक-डेढ़ लोटा पानी निकल ही जाता है। वह पानी निकल कर नाली में ही जाता है जो कि पशुओं तक के पीने के काम नहीं आता है। हम घड़ा थोड़ा- सा खाली रहते हुए ही हैण्डपम्प चलाना बन्द करके उस पानी को बचा सकते हैं और पापों से भी बच सकते हैं। ऐसे ही कई लोग हैण्डपम्प पर हाथ-पैर धोते हैं, कुल्ला करते हैं। एक हैण्डपम्प चलाता है, एक-हाथ पैर धोता है उस समय भी ऐसा ही होता है। हाथ-पैर अच्छे धुल नहीं पाते हैं। बहुत सारा पानी व्यर्थ ही चला जाता है। हैण्डपम्प से ही धोना है तो थोड़ा-थोड़ा चलाकर पतली धार में भी हाथ-पैर धोये जा सकते हैं। थोड़े से विवेक से पानी भी बचा सकते हैं और पाप से भी बच सकते हैं।

पीते समय

जब हम पानी पीने के लिए पानी की प्याऊ, नल अथवा जहाँ पानी के घड़े रखे रहते हैं वहाँ जाते हैं तो पानी का गिलास लेते हैं, आधा पीते हैं और आधा गिलास अथवा गिलास में से एक-दो घूंट तो अवश्य फेंकते ही हैं। यदि नहीं फेंकते हैं तो हमें ऐसा अनुभव होता है कि हम बहुत प्यासे-भूखमरे हैं, पेटू हैं इसलिए तो पूरा-पूरा पानी पी गये हैं। हमें देखकर किसी को ऐसा लगे या ना लगे हमें ऐसा अवश्य लगता है क्योंकि हमारे अन्दर ऐसी ही धारणा बनी हुई है। वास्तव में, पानी का महत्त्व हमें तब समझ में आता है जब हमें जोर से प्यास लग रही हो और बहुत प्रयास करने के बाद भी कहीं पर भी पानी मिलने की आशा नहीं दिखती हो। जब हम उस ट्रेन में बैठे हों जो किसी मान्य स्टेशन पर ही रुकती है, हमारी बॉटल का पानी खतम हो चुका है। हमारा गला सूखने लगता है, हमारे शरीर में से आग-सी निकलने लगी हो। तब हमें अनुभव होता है कि पानी कितना महँगा है, कितना दुर्लभ एवं मूल्यवान है।

एक सेठ के घर में नयी-नयी बहू आई थी। परदा प्रथा थी इसलिए वह घूंघट डाल कर काम कर रही थी। अचानक उसका पैर एक लोटे से टकरा गया अर्थात् एक लोटे से उसकी ठोकर लग गई। ठोकर लगते ही लोटा लुढ़क गया। लोटे का पानी नाली में बह गया। यह सब घटना पास में खड़े सेठजी देख रहे थे। लोटा लुढ़कते ही सेठजी को गुस्सा आ गया। सेठजी ने बहू को इस छोटी-सी बात को लेकर बहुत डाँट दिया। सेठजी की डाँट का बहू पर उलटा प्रभाव पड़ा। उनकी डाँट सुनकर बहू सोचने लगी, अहो ! मेरे ससुर इतने कंजूस हैं जो एक लोटा पानी के लिए भी इतना डाँटते हैं तो मैं इनके घर में घृतपूरित मिष्टान्न अर्थात् लड्डू-पेड़ा, घेवर-बाबर, मालपुआ आदि कैसे खा सकूँगी, कैसे मैं अच्छी से अच्छी भोग सामग्री खरीद सकती हूँ ? अच्छी सामग्रियों का भोग कर सकती हूँ, आदि-आदि विचार उठते-उठते उसको लगने लगा कि मुझे जीने से भी क्या मतलब, मेरा तो जीवन ही व्यर्थ हो गया। हाय! मुझे अपने जीवन में कभी भी न इच्छित पदार्थ खाने को मिलेंगे, न पहनने को, न इच्छित स्थानों पर घूमने को मिलेगा और न ही मैं मनोरंजन की कोई इच्छित वस्तु खरीद सकूँगी। इन सब विचारों ने उसके मस्तिष्क में टेंशन का रूप धारण कर लिया। टेंशन से उसकी नींद भाग गई। उसकी भूख ने उससे विदा ले ली। बोलना-चलना लगभग बंद-सा हो गया, प्रसन्नता तो उससे कोसों दूर जाकर छुप गई। इन सब कारणों से उसका शरीर कृश होने लगा। वह दिन-प्रतिदिन दुबली होने लगी।

एक दिन बहू की ऐसी दशा देखकर ससुर ने पूछा-बेटी ! तुम्हें क्या तकलीफ है? तुम इतनी दुबली क्यों होती जा रही हो? क्या सिरदर्द है?... आदि अनेक प्रश्न ससुर ने पूछे लेकिन बहू ने सभी प्रश्नों के उत्तर नकारात्मक ही दिये। सेठजी बहू के उत्तरों से सन्तुष्ट नहीं हुए और न बहू की बीमारी का अनुमान लगा पाये। सेठजी ने कई विधियों से बहू की बीमारी जानने की कोशिश की लेकिन सेठजी को कोई सफलता नहीं मिली। इसलिए वे एक अच्छे अनुभवी वैद्य को लेकर अपने घर पहुँचे और बहू का स्वास्थ्य दिखाया। वैद्य जी बहू की नाड़ी देखकर बोले- ''सेठजी ! बहू को खून की बहुत कमी है। इनको यदि 'मुक्तापिष्टी' दी जाये तो ये बहुत जल्दी ठीक हो जायेंगी।'' सेठजी ने पास खड़े मुनीम से कहा, ''मुनीम जी ! जल्दी जाओ और तिजोरी में जो असली मोती रखे हैं उनमें से दो तोला मोती लाकर वैद्यजी को दे दो।'' मुनीम जी मोती लेने चले गये। इधर बहू सेठजी के पैर में पड़कर बोली, ''पिताजी ! मेरी तबीयत ठीक हो गई। अब मैं थोड़े ही दिन में अच्छी स्वस्थ हो जाऊँगी।'' सेठजी बोले ''बेटी, ऐसा नहीं कहो। वैद्य जी जो दवाई दें उसे खाओ, पथ्य पालो, जल्दी ठीक हो जाओगी''...। बहू ने कहा ''पिताजी ! मैं अपनी बीमारी आपको बताती हूँ। मुझे आपकी एक बात से टेंशन हो गया था इसलिए मेरा स्वास्थ्य गिर रहा था। अब टेंशन समाप्त हो गया। इसलिए मैं अब ठीक हो जाऊँगी। लेकिन आप यह बता दीजिए कि आपने मुझे उस दिन एक लोटा पानी लुढ़क जाने मात्र से इतना क्यों डाँटा ?''

सेठजी ने कहा ''बेटी ! तुम पानी का महत्त्व नहीं समझती हो। संसार में पानी सबसे महँगा है। व्यक्ति हर चीज के बिना शरीर की रक्षा कर सकता है, लेकिन पानी पीये बिना तो ४-५ दिन से ज्यादा नहीं जी सकता। यद्यपि संसार में पानी सबसे सस्ता मिलता है फिर भी उसको अमूल्य कहा गया है क्योंकि उसका कोई मूल्य नहीं आँका जा सकता है। पानी का दूसरा नाम अमृत है क्योंकि पानी पीने से मरता हुआ आदमी भी जी जाता है। मेरे जीवन में भी ऐसी घटना घटी थी जिससे मुझे अनुभव में आया कि पानी कितना मूल्यवान है।

एक बार मैं घी लेने के लिए पास के गाँव में गया। मेरा घी का ही व्यापार था। मैं जब घी के टीन तैयार करके आने वाला था तो मेरे एक आसामी ने (जिसके यहाँ से मैंने घी खरीदा था) मुझे अच्छा घी डालकर दाल-बाटी का भोजन करवाया। मैं दाल-बाटी खाकर वहाँ से रवाना हो गया। रास्ते में प्यास लगी। मैंने अपना लोटा

और रस्सी निकाली तथा कुआ ढूँढ़ने लगा। लेकिन मुझे कहीं कुआ नहीं मिला। न मुझे बावड़ी, प्याऊ, झरना, नदी, आदि कोई भी पानी का स्थान मिला। मुझे लगने लगा कि यदि मुझे कुछ देर और पानी नहीं मिलेगा तो मैं मर जाऊँगा, क्योंकि जेठ माह की गर्मी थी, नीचे से जमीन तप रही थी, ऊपर से सूर्य तप रहा था तथा पेट के अन्दर जो बाटी खाई थी उसकी गर्मी बढ़ रही थी, प्यास लग रही थी। जंगल में इधर-उधर बहुत घूमने के बाद मुझे एक झोपड़ी दिखी जिसमें एक व्यक्ति पानी का एक घड़ा भर कर ला रहा था। मैंने उससे कहा- ''भैया ! मुझे एक लोटा पानी पिला दे, प्यास के मारे मेरे प्राण निकले जा रहे हैं।'' उसने कहा- ''सेठजी, आपको पानी के अलावा जो कुछ चाहिए वह माँग लो। मैं पानी नहीं दे सकता, क्योंकि मैं भी बड़ी मुश्किल से यह एक घड़ा पानी लाया हूँ''...। मैंने उसके हाथ जोड़े। उसके सामने गिड़गिड़ाया तब उसने दया करके मुझे इस शर्त पर एक लोटा पानी देना स्वीकार किया कि मैं अपनी गाड़ी में रखी हुई वस्तु अर्थात् एक लोटा भरकर घी दूँ। मैंने मजबूर होकर एक लोटा भरकर घी दिया और उसके बदले में एक लोटा पानी लिया। उसको पीकर मैंने अपनी जान बचाई तब से मुझे समझ में आया कि पानी कितना मूल्यवान है? जीवन के लिए कितना आवश्यक है। इस बात को समझकर गम्भीरता से विचार कर पानी का उपयोग करना चाहिए। अब बहू को ससुर का अभिप्राय समझ में आ गया। बहू विवेकपूर्वक कार्य करने लगी।

आँगन धोते समय

कई महिलाएँ आँगन धोने के लिए अर्थात् आँगन की सफाई करने के लिए पहले सटक लेकर पूरे आँगन में पानी फैलाती हैं, उसके बाद वाइपर या पौंछा लेकर आँगन पौंछती हैं। सटक से पानी फैलाने में दो-चार बाल्टी पानी तो कम-से-कम फैल ही जाता है, क्योंकि सटक डाइरेक्ट नल, टंकी या बोरिंग से जुड़ी रहती है। उसमें प्रेसर से पानी आता है इसलिए उसे कम नहीं किया जा सकता है। सटक के स्थान पर बाल्टी में पानी लेकर भी अच्छी तरह से आँगन को साफ किया जा सकता है, क्योंकि सटक से पानी डालने के बाद भी आपको वाइपर या पौंछा लेकर साफ तो करना ही पड़ेगा। पौंछे से साफ किये बिना मात्र पानी डालने से तो आंगन किसी भी हालत में साफ नहीं हो सकता है। मेहनत तो आपको उतनी ही करनी पड़ेगी। दूसरी बात जहाँ सटक से पानी डाला है वहाँ पैर आदि लग गये तो सूखने के बाद वैसे के वैसे चमकने लगते हैं। सटक से धोने में दीवाल के किनारे-कोनों

की सफाई तो किसी भी हालत में हो ही नहीं सकती। कभी-कभी कोई सटक से पानी नहीं डालता है तो २-३ बाल्टी भर-भर के पानी डालकर आँगन धोते हैं। ऐसा करने में पानी प्रेशर से बहकर चला जाता है। हाँ, आँगन का मोटा-मोटा कचरा (जो महिलाएँ झाडू लगाना नहीं जानती हैं उनके घर का) जरूर बहकर चला जाता है। आँगन साफ नहीं हो पाता है। ऐसा करने से तो दोहरा पाप ही लगता है। एक तो व्यर्थ बिना छना पानी डालने और दूसरा इतना सारा पानी एक साथ डालने से आँगन में जितने छोटे-मोटे जीव होंगे वे बहकर नाली में चले जायेंगे। जिस प्रकार अपने लिए नदी की बाढ़ आती है उनके लिए वह बाल्टी भर पानी या सटक से डाला गया पानी बाढ़ के बराबर ही होगा। उनको मारने का पाप भी लगेगा।

एक दिन एक मंदिर की मालिन ने आकर कहा- ''माताजी! मुझे कुछ पश्चाताप दे दो। मुझे बहुत दुःख होता है जब मैं मंदिर में पौंछा लगाकर बाल्टी में देखती हूँ तो २-४ चींटियाँ तो मरी हुई मिल ही जाती हैं जबकि मैं झाडू साथ में लेकर साफ करती जाती हूँ और पौंछा लगाती जाती हूँ।'' आप सोचें, जो संभवत: साक्षर भी नहीं होगी उसके दिल में कितनी दया है। आप एक बार उसके आँगन साफ करने की विधि से अपनी आँगन धोने की विधि का मिलान कर लें तो आपको सब समझ में आ जायेगा। आप आँगन साफ रखें पानी के व्यर्थ खर्च से बचें और चींटी आदि जीवों की हिंसा के पाप से भी बचें।

कपड़े धोते समय

आप कपड़े धोते समय, उस दिन को जिस दिन आपके घर में बहुत कम पानी था और आज जब आपके सामने नल से या बोरिंग-हैण्डपम्प से भरपूर पानी आ रहा है, याद अवश्य कर लें। उस दिन आपने कितने पानी से बिल्कुल साफ कपड़े धो लिये थे। आज आप इतने पानी में कपड़े धो रही हैं, कपड़े कितने साफ धुल रहे हैं। वास्तव में, ज्यादा पानी से कपड़े धोते समय कपड़ों को मसलने का ध्यान ही नहीं रहता है अथवा उस समय कपड़ों को मसलने की आवश्यकता ही समझ में नहीं आती। फलत: कपड़ों का साबुन- सर्फ अच्छी तरह से नहीं निकल पाता है। उस समय तो कुछ भी समझ में नहीं आता। यह बात तब समझ में आती है जब कपड़े सूखने के बाद कड़क हो जाते हैं या कपड़े पहनने के बाद हाथ-पैर पीठ आदि में खुजली चलने लगती है, क्योंकि बाल्टी भर पानी में से कपड़ा निकाला और अच्छी तरह से बिना निचोड़े ही दूसरे साफ पानी में डाल दिया। इसलिए उसका साबुन नहीं निकल पाता है। कभी-कभी हम लोगों की साड़ियाँ भी कड़क लगती हैं, कभी तो उनमें साबुन तक चिपकी मिलती है, कभी सर्फ के कण दिखाई देते हैं तो कभी साड़ियों में से साबुन-सर्फ की गंध आती रहती है। उसका कारण यही है कि शायद वे लोग सोचती हैं कि हम माताजी की साड़ी बहुत अच्छी धोएँगे इसलिए खूब पानी ले लेते हैं और बहुत सारा सर्फ साबुन भी। फलत: साड़ी साफ तो नहीं धुलती बल्कि सूखने के बाद कड़क अवश्य हो जाती है क्योंकि साड़ी को साफ करने के लिए बृश लगाना, कूटना, फटकारना आवश्यक होता है। कपड़ों को मसले बिना कपड़ों से न साबुन निकलती है और न ही मैल साफ होता है। साबुन नहीं निकलने से कपड़े कड़क हो जाते हैं। दूसरी बात उन साबुन वाले कपड़ों को पहनने से शरीर में खुजली चलने लगती है, चर्म रोग भी हो सकते हैं, एलर्जी सम्बन्धी बीमारियाँ भी हो सकती हैं।

कई महिलाएँ जब नल में पानी आता है तब कपड़े धोती हैं तो उन्हें लगता है कि मैं ज्यादा-से-ज्यादा नल का पानी काम ले लूँ नहीं तो नल का पानी फालतू चला जायेगा। उनके भी कपड़े ऐसे ही (जैसे ऊपर बताये गये हैं) धुलते हैं। कई महिलाएँ बाल्टी भर पानी में साबुन से धोकर २-३ कपड़े डाले पानी थोड़ा गन्दा दिखने लगा, फेंक देती हैं। कई महिलाएँ जब उनके पास ज्यादा पानी होता है, भगोने भर पानी को भी ऐसे ही फेंक देती हैं और जब पानी कम होता है तब पानी के बहुत गन्दे हो जाने पर भी नाली वगैरह को साफ करने में काम ले लेती हैं, लेना ही पड़ता है। मेरे अनुमान से तो कम पानी में जितने साफ कपड़े धुलते हैं उतने साफ अधिक पानी में नहीं धुल पाते हैं, क्योंकि अधिक पानी होने से लापरवाही ज्यादा हो जाती है जिससे साबुन ज्यादा खर्च हो जाता है और कपड़े साफ नहीं हो पाते हैं। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि आप कपड़े गन्दे ही पहनने लगें या बहुत कम पानी में धोने लगें, क्योंकि बहुत कम पानी से कपड़े धोने पर भी वही स्थिति बनती है जो स्थिति बहुत ज्यादा पानी में कपड़े धोने पर बनती है। ऐसा करने वालों को दुगुना नहीं तीन गुणा नुकसान होता है।

(१) व्यर्थ पानी फेंकने का पाप (२) आपके कपड़े धोने का पानी जितनी दूर तक जायेगा उतनी दूर तक के असंख्यातों जीव मर जायेंगे उसका पाप (आप जितना पानी ज्यादा डालेंगे वह उतनी ही अधिक दूर तक जायेगा) (३) ज्यादा साबुन पानी लगाने पर भी कपड़े साफ नहीं हो पायेंगे, जिससे जल्दी से फिर उनको

धोने की मेहनत करनी पड़ेगी, साबुन खर्च करना पड़ेगा तथा पाप भी बँधेगा।

इधर हम कपड़े धोने, आँगन साफ करने में इतना सारा पानी व्यर्थ में व्यय कर देते हैं और उधर यदि हमारे घर पर कोई आशा लेकर पीने के लिए एक गिलास पानी माँग ले तो हम कह देते हैं कि हैण्डपम्प पर चले जाओ, प्याऊ पर जाकर पी लो...। हम किसी प्यासे को एक गिलास पानी नहीं पिला सकते हैं, हमारे नल से यदि कोई एक घड़ा पानी भरने के लिए आ जाता है तो हम मना कर देते हैं। हम यह कह देते हैं कि अरे ! हमारे नल में हमारे घर की आवश्यकता जितना पानी भी नहीं आता है, तुम्हें कैसे भरने दें। आप यदि पानी का विवेकपूर्वक उपयोग करें तो आपको मना नहीं करना पड़ेगा, क्योंकि माँगने की अपेक्षा मना करना अधिक अधमता मानी गई है। आपने एक प्यासे गरीब व्यक्ति को समय पर यदि एक गिलास पानी पिला दिया तो वह आपको जीवन भर याद करेगा। आपके गुण गायेगा। परोपकार करने से आपको पुण्य भी मिलेगा और अनर्थक पानी के व्यय से आप बचेंगे सो उससे उत्पन्न होने वाले पाप से भी आप बच जायेंगे।

पैर धोते समय

कई लोग जब भगवान के दर्शन करने के लिए जाते हैं तो मंदिर के बाहर अपने पैरों को धोते समय दो-तीन लोटे पानी उडेल लेते हैं। २-३ लोटे पानी उडेल लेने के बाद भी उनके पैरों में लगा हुआ गोबर-कीचड़ या सड़क की गन्दगी नहीं उतरती, उनके पैर की एड़ियाँ और बीच का भाग साफ नहीं होता। इतना पानी डालकर पैर धोने के बाद भी उन्हें मंदिर में जाने का लगभग उतना ही पाप लग जाता है जितना बिना पैर धोये जाने वाले को लगता है, क्योंकि पैर धोने का अर्थ है सड़क पर चलने से लगी गन्दगी साफ हो जावे। गन्दगी साफ करने के लिए पैर को रगड़ना आवश्यक होता है। थोड़ा पानी डालकर भी हम पैरों को अच्छी तरह साफ धो सकते हैं। राजा श्रेणिक को (राजकुमार अवस्था में) जब देश निकाला दे दिया गया था तो वह चलते-चलते वेणपद्म नगर में पहुँचा। वहाँ की एक श्रेष्ठी (जिनके साथ वह उस गाँव में आया था) कन्या ने उसको अपने घर बुलाने के लिए कुछ संकेत भेजे। वह संकेत के अनुसार उसके घर पहुँचा। घर के बाहर लगभग घुटनों तक कीचड़ भरा था। उस कीचड़ में एक तरफ एक मोटा लक्कड़ डला था। राजा श्रेणिक ने लक्कड़ के ऊपर से जाना उचित नहीं समझा। इसलिए वह कीचड़ में से ही निकलकर उसके घर पहुँचा। श्रेणिक के पैर कीचड़ से भर गये। उस लड़की ने अपनी दासी के साथ एक गिलास पानी भेजते हुए कहा ''इस पानी से पैर धोकर अन्दर आ जाओ।'' श्रेणिक ने उस थोड़े से पानी को देखकर सोचा, मैं कैसे इतने से पानी में पैर धोकर अन्दर जाऊँ। आखिर उन्होंने एक बाँस की पतली लकड़ी ली और पहले पैरों का पूरा कीचड़ साफ करके एक गिलास पानी में पैर धोकर थोड़ा सा पानी बचा भी लिया। हमारे ऐतिहासिक पुरुष कितने विवेकवान थे, उनकी दृष्टि में पदार्थ का कितना महत्त्व था, वे पदार्थ का कितना सदुपयोग करते थे और आज हम पदार्थ का कितना दुरुपयोग करते हैं। हमें भी उनको आदर्श बनाकर वस्तु का सदुपयोग करना चाहिए जिससे वह पदार्थ किसी के काम आवे और हम भी पापों से बच जावें। इसी प्रकार जब हम लोग आहार के लिए जाते हैं वहाँ चौके (रसोई घर) के बाहर पैर धोये जाते हैं। प्रतिगृह करने वाले जब पैर धोते हैं तो ५-७ व्यक्ति के पैर धोने में लगभग एक बाल्टी पानी खाली हो जाता है। फिर भी कभी-कभी पैर अच्छी तरह से नहीं धुल पाते हैं। वहाँ पर भी यदि विवेक रखा जाये तो कम पानी में पैर धोये जा सकते हैं।

अनावश्यक प्रयोग

कई लोग अपने घर/दुकान के सामने की सड़क पर ही पानी छिड़कते हैं। महाराष्ट्-, दक्षिण प्रान्त में इसका प्रचलन ज्यादा है। उनके पानी छाँटने का उद्देश्य शायद घर के सामने की सड़क साफ रखना है। लेकिन क्या सड़क भी कभी साफ हो सकती है? मुझे तो लगता है कि पानी छिड़कने से सड़क साफ हो या न हो यह बात अलग है परन्तु सड़क पर पड़ा गोबर, कूड़ा-कचरा, कुत्ते का मल तो निश्चित रूप से गीले हो ही जाते हैं। ये सूखी हुई चीजें भले ही इतनी गंदी नहीं दिखें लेकिन गीली होने के बाद अवश्य ही सड़क गन्दी दिखने लगती है। दूसरी बात, मान लिया आपने शटक लेकर सड़क को बिल्कुल साफ भी धो डाला, फिर भी वह सड़क कितनी देर साफ रहेगी/साफ रह सकती है? आप कितनी देर तक गाय-भैंस, कुत्ते-बिल्ली को मल-मूत्र करने से रोक सकते हैं, कितनी देर लोगों का आना-जाना बन्द कर सकते हैं, आप कितने लोगों को थूकने से रोक सकते हैं, कितने लोगों के जूते-चप्पलों में लगी गन्दगी को नहीं गिरने देंगे। आखिर घंटे-आध घंटे में आपके देखते-देखते ही सड़क गंदी हो जायेगी। सड़क गंदी देखकर एक बार तो आपको पश्चाताप होगा ही कि अरे ! मैंने तो इतनी मेहनत करके सड़क धोयी और लो, इतनी सी देर में वापस गन्दी भी हो गयी।

एक दिन सड़क पर पानी छिड़कते हुए एक महिला को देखकर मैंने पूछा-तुम लोग यह पानी क्यों छिड़कते हो? उसने कहा-अम्मा, मिट्टी में पानी डालने से सौंधी-सौंधी खुशबू आती है इसलिए हम लोग पानी छाँटते हैं। मैंने सोचा-देखो, कितना अविवेक है। २-४ मिनट के लिए खुशबू आयेगी और समाप्त हो जायेगी लेकिन इन बाल्टी भर पानी के जीवों की जान चली जायेगी। उनका क्या होगा? यह बाल्टी भर पानी बह गया, समाप्त हो गया, धूल में मिल गया, उसका क्या होगा? क्या वह पानी वापस आयेगा? सौंधी खुशबू तो थोड़ी-सी धूल में आधा गिलास पानी डालकर भी ली जा सकती थी।

तीसरी बात, कई लोग कहते हैं कि माताजी! पानी छाँट देने से रास्ते की धूल नहीं उड़ती है, धूल उड़-उड़ कर घर में नहीं आती है, घर में सफाई बनी रहती है। हाँ, यह बात सत्य है कि पानी छाँट देने से धूल नहीं उड़ती है। लेकिन कितनी देर तक, २०-२५ मिनट में पानी सूख जायेगा, फिर से धूल उड़ने लगेगी। आखिर आप कितनी देर तक धूल उड़ने से रोक पायेंगे? अत: पानी का छिड़काव करने के पहले थोड़ा सोच लें ताकि अनर्थक पाप से बच सकें।

नोट : यदि रंगोली डालने के लिए थोड़े से स्थान पर पानी छिड़क देवे तो कोई गलत नहीं है।

बर्तन साफ करते समय

कई महिलाएँ जब बर्तन साफ करती हैं तो बर्तनों को पाउडर-साबुन या राख आदि से माँजकर नल चलाकर धोती हैं अथवा एक भगोने या बड़े बर्तन में पानी लेकर बर्तन माँज-माँजकर उसमें डुबोती जाती हैं। इस प्रकार बर्तन धोने से बर्तनों का पाउडर/राख/साबुन पूरी तरह नहीं निकल पाता है। इसीलिए तो कभी-कभी बर्तन में दूध डालते ही फट जाता है, चाय फट जाती है। उसका कारण क्या है? बर्तन को धोया तो था लेकिन हाथ से रगड़ कर साफ नहीं किया था। अधिक पानी में धोने से तत्काल तो बर्तन साफ दिखे परन्तु अगर वास्तव में बर्तन साफ हो गये तो दूध क्यों फट गया? क्यों सूखने के बाद बर्तनों में भभूदर दिखाई देने लगती है। यदि हम थोड़ा-थोड़ा पानी डालकर रगड़कर धोते तो ऐसा नहीं होता। मेरे अनुमान से कम पानी से बर्तन साफ करने वालों के यहाँ ऐसा कभी नहीं होता होगा।

दूसरी बात, उन बर्तनों में लगा हुआ पाउडर साफ नहीं होने से भोजन के साथ हमारे पेट में पहुँचता है। आप सोचें-उस पाउडर से हमारे शरीर में कितनी बीमारियाँ खड़ी होती होंगी।

हमारे शरीर के कितने प्रोटीन-विटामिन शरीर के शक्तिप्रदायक पदार्थ उस पाउडर से नष्ट हो जाते होंगे। आप स्वयं सोचें, थोड़े से प्रमाद में कितना नुकसान हो गया। बर्तन तो हमेशा माँजने पड़ेंगे। दिन में चार बार भी माँजने पड़ेंगे। लेकिन बर्तन माँजकर हम थोड़ा-सा प्रमाद छोड़कर विवेकपूर्वक काम करें, पापों से भयभीत रहें तो निश्चित रूप से उपर्युक्त हानियों से बच सकते हैं।

पेट में पाउडर पहुँचने से होने वाली हानियाँ

(१) डिटर्जेन्ट्स में फास्फेट्स एवं कार्बोनेट्स होते हैं जो क्षारीय तत्त्व होते हैं। ये तत्त्व गले एवं उदर की म्यूकस्लाइनिंग को जला सकते हैं तथा गहरे घाव भी पैदा कर सकते हैं।

(२) इनसे अधिक मात्रा में लार बनना, खाना खाने एवं बोलने में दर्द, वमन अथवा खून की उल्टियाँ तथा वमन के फेफड़ों में पहुँचने पर फेफड़े एवं श्वास नलियों का संक्रमण भी हो सकता है।

इसी प्रकार कई महिलाएँ जब पानी भरने के बर्तन माँजकर धोती हैं तो दो-तीन घड़े धोने में लगभग एक घड़ा पानी लगा देती हैं लेकिन उनके घड़े साफ नहीं होते। कभी-कभी हैण्डपम्प, बोरिंग, नल को चलाकर घड़े धोते हैं तो उनके घड़ों की हालत भी वैसी ही होती है जैसी बिना हाथ से रगड़े बर्तन धोने पर होती है। कई महिलाएँ मिट्टी के बर्तनों को धोते समय पानी तो बहुत डालती हैं लेकिन अन्दर कपड़ा डालकर नहीं रगड़तीं। फलत: उनके घड़े अन्दर चिकने हो जाते हैं, उनमें काई लग जाती है। ऐसा करने से पानी भी ज्यादा खर्च होता है और गंदे बर्तनों का पानी पीने से हिंसा भी होती है और स्वास्थ्य भी बिगड़ता है।

ऐसे ही कई लोग साइकिल, मोटर साइकिल, गाड़ी आदि को धोते समय भी इसी प्रकार का अविवेक करते हैं। उन्हें भी विवेकपूर्वक पानी का उपयोग करना चाहिए।

नल में टोंटी नहीं लगाने से

कई लोग अपने घर के नल में टोंटी नहीं लगाते हैं। उनके अनेक तर्क

रहते हैं। कोई कहता है टोंटी लगाने से नल में पानी कम आता है। कोई कहते हैं टोंटी लगाते हैं तो जब कभी कोई खोल कर ले जाता है, हम कब तक टोंटी लगाते रहेंगे। कोई कहते हैं जब बिना टोंटी के काम चलता है तो टोंटी लगाने की क्या आवश्यकता है ? आप सोचें, आपके नल में जैसे ही पानी आता है आपको किसी के माध्यम से यह मालूम पड़ता है कि पानी आ गया है, तब आप कितनी भी तेजी से घड़ा लेकर नल के पास पहुँचे, ''आपके पहुँचने तक, यदि नल में टोंटी नहीं लगी है तो, एक दो बाल्टी पानी तो पक्का यों ही बह जायेगा। यह सच है कि टोंटी लगायें या नहीं लगायें वो पानी तो आपको नहीं मिलेगा। लेकिन हाँ, टोंटी लगाने से वह पानी बहकर नाली में नहीं जाकर किसी के नल में जायेगा। वह उसका उपयोग करेगा। टोंटी नहीं लगाने से पाप कर्म का बन्ध होगा और टोंटी लगाने पर आप पाप से बच जायेंगे। आपकी टोंटी कोई खोलकर ले जाता है तो ताले वाली टोंटी लगा सकते हैं। इतनी आपकी हैसियत नहीं है तो आप लकड़ी का कोई टुकड़ा नल में फँसा सकते हैं। भुट्टे के अन्दर निकलने वाला डूँडा (मूठा) भी लगा सकते हैं। यदि आप हमेशा भी नया डूँडा लगायेंगे तो भी महँगा नहीं पड़ेगा। आप फटे कपड़े या टाट की टोंटी बनाकर लगा सकते हैं। थोड़ा-सा प्रमाद छोड़ने में आप सोचें कितना बड़ा लाभ हो रहा है। पानी की एक-एक बूँद के असंख्यातों जीवों को जीवनदान देने का फल थोड़ी-सी सावधानी रखने में आपको मिलेगा। इससे बड़ा धर्म क्या हो सकता है?

कहने का तात्पर्य यह है कि हम पानी का उपयोग/प्रयोग करते हैं लेकिन यह सोच ही नहीं पाते हैं कि हमें कहाँ, कितने पानी का उपयोग करना चाहिए। कहाँ पानी का उपयोग करने से लाभ होगा और कहाँ हानि? कहाँ, कितने पानी की आवश्यकता है, क्योंकि हमारी दृष्टि अधिकतर धन की ओर रहती है, वस्तु के आर्थिक मूल्य की ओर रहती है। वास्तव में पैसे की दृष्टि से तो पानी का कुछ भी मूल्य नहीं है लेकिन फिर भी उसे बिना मूल्य का नहीं कहा जा सकता है।

कई लोग भगवान का अभिषेक करते समय भी इसी प्रकार का अविवेक करते हैं। कोई-कोई तो इतना कम पानी डालते हैं कि गंधोदक तक नहीं बन पाता तो कोई घड़ों-घड़ों पानी भगवान के ऊपर डालते ही जाते हैं जिससे इतना गंधोदक हो जाता है कि उसका विसर्जन करने के लिए सही स्थान नहीं मिलता। जहाँ-कहीं विसर्जन करने पर उसमें अशुद्ध वस्तुओं के सम्पर्क होने की सम्भावना रहती है। एक ही स्थान पर डालते रहने से जीवोत्पत्ति होकर हिंसा होती है। इसी प्रकार साधु-सन्तों के नगर प्रवेश आदि के समय चरण-प्रक्षालन में भी ऐसा अविवेक हो जाता है। लोग एक जग भर पानी से साधु के पैर धुलाते हैं, कोई-कोई तो भगोने भर पानी में साधु के पैर डुबो देते हैं। वे यह तक नहीं सोचते हैं कि इनके चरण धोने पर प्राप्त इतने सारे गंधोदक को कहाँ डालेंगे? यदि वह मात्रा ज्यादा होने से सूखेगा नहीं तो उसमें कितने जीव उत्पन्न होंगे अथवा उस पर किसी का पैर लग गया तो कितना पाप लगेगा। अत: भगवान का अभिषेक करते समय ध्यान रखना चाहिए कि गंधोदक इतना कम भी न हो कि सबको लगाने के लिए भी नहीं हो पावे अथवा उसको बढ़ाने के लिए पानी मिलाना पड़े और इतना अधिक भी न हो कि उसको विसर्जित करने का स्थान ही नहीं मिल पावे। भगवान के ऊपर बहुत पानी से अभिषेक करने से भी पानी का अपव्यय ही होगा, उसके निमित्त से भी पाप का ही आस्रव होता है। और भी अनेक स्थानों पर हम पानी का दुरुपयोग कर लेते हैं, सभी को यहाँ नहीं लिखा जा सकता है इसलिए अपने विवेक से पानी सम्बन्धी जीवों की रक्षा करनी चाहिए।

प्रश्न : पानी के बारे में उपर्युक्त विवेचन को सुन/पढ़कर के कई लोग कहते हैं कि अरे माताजी! हम और आप, आप के कहे अनुसार पानी बचा भी लेंगे तो क्या वह पानी उन लोगों के वहाँ, जहाँ पानी की कमी है, पहुँच जायेगा?

उत्तर : हाँ, आपका कहना बिल्कुल सही है। आपके और हमारे द्वारा बचाया गया पानी उनके यहाँ नहीं पहुँचेगा। लेकिन-

(१) हमारा देश के प्रति कर्त्तव्य तथा जीव मात्र के प्रति दया का परिणाम तो पल गया।

(२) हम जिस पानी का बिना प्रयोजन उपयोग करते उससे जो पाप का आस्रव होता उस पाप से तो हम बच जायेंगे।

(३) नल, बोरिंग, हैण्ड-पम्प आदि से हमने जो विवेक पूर्वक पानी बचा लिया वह पानी निश्चित रूप से दूसरे के यहाँ पहुँचेगा, उसके काम में आ जायेगा।

(४) जमीन में पानी का स्तर नीचे नहीं होगा, यह कितना बड़ा लाभ है।

(५) जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पालन करने से हमारे पूर्वोपार्जित पापों का क्षय होगा तथा आगे के लिए पापास्रव रुक गया। यह सबसे बड़ा लाभ

तो हमें होगा ही।

इस प्रकार हमारे द्वारा बचाया गया पानी अप्रत्यक्ष रूप से वहाँ तक भी पहुँच जायेगा जहाँ पानी की कमी है।

पानी को बचाने के लिए

(१) कागज के टुकड़े व अन्य गंदगी टॉयलेट में फेंकने की बजाय कचरे के डिब्बे में फेंके ताकि उनको बहाने के लिए पानी नहीं डालना पड़े।

(२) तेजी से चलने वाले नल की टोंटी को बदलवाकर ऐसी टोंटी लगवाएँ जिसमें पानी कम दबाव के साथ धीमे बहता हो।

(३) गाड़ी को पूरा धोने की बजाय एक बार सूखे कपड़े से झाड़कर फिर गीले कपड़े से पौंछ ले।

अनावश्यक पानी बहाने से हानि

अनावश्यक अर्थात् बर्तन साफ करते, नहाते, कपड़े आँगन आदि धोते समय विवेक नहीं रखने से अथवा नल में टोंटी आदि नहीं लगाने से जो पानी अनावश्यक रूप से नाली में बह जाता है उससे अनेक प्रकार की हानियाँ होती हैं, उनमें से कुछ हानियाँ इस प्रकार हैं-

धार्मिक हानि : पानी की एक बूँद में वैज्ञानिकों की दृष्टि से अर्थात् माइक्रोस्कोप (सूक्ष्मदर्शी यंत्र) से देखने पर ३६,४५० जीव चलते-फिरते-दौड़ते दिखाई देते हैं। यह चक्षु इन्द्रिय से दिखाई देने वाले जीवों की संख्या है। जैनागम के अनुसार तो अनछने पानी की एक बूँद में असंख्यात त्रस जीव अर्थात् द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव होते हैं। यदि हमने एक गिलास पानी भी अनावश्यक फेंका तो आप सोचें कितने त्रस जीवों की हिंसा हुई। एक बूंद में असंख्यात जीव होते हैं तो एक गिलास पानी में कितनी बूँदें होंगी और उनमें कितने जीव होंगे। उन सबकी हत्या का पाप हमें थोड़े से प्रमाद के कारण लग गया। छने हुए पानी में यद्यपि त्रस जीव नहीं होते हैं लेकिन जलकायिक जीवों को तो उसमें से अलग नहीं किया जा सकता है, उनकी हिंसा तो होगी ही होगी। यदि प्रासुक पानी भी है तो भी वह नाली के अनछने पानी में मिल जाता है। वहाँ उसकी मर्यादा समाप्त होने पर अर्थात् चौबीस घंटे के बाद उसमें पुन: जीव उत्पन्न होते हैं, उनका मरण होता है, उसमें भी हम निमित्त बनते हैं, उसका पाप भी हमें लगता है। इस प्रकार अनावश्यक पानी बहाने से हमारे सिर पर पाप का इतना भार लद जाता है कि हमारे द्वारा किया हुआ धर्म-कर्म सब पानी में मिल जाता है क्योंकि दया के बिना धर्म नहीं हो सकता है, दया का अभाव हुए बिना पानी को अनावश्यक नहीं बहाया जा सकता है अत: धर्म कैसे होगा ?

दूसरी बात, अनावश्यक पानी बहाने वालों को भविष्य में पानी के लिए तरसना पड़ेगा, क्योंकि जिसको जो वस्तु मिलती है उसका यदि वह दुरुपयोग करता है, सही उपयोग नहीं करता है, उसके प्रति लापरवाही वर्तता है तो उसको वह चीज कभी नहीं मिलती है। इसीलिए तो कहते हैं कि बोलने की क्षमता मिलने पर जो गाली-गलौच करता है, कड़वा बोलता है, अधिक एवं अनावश्यक बोलता है तो उसे अगले भव में गूंगा, तोतला बनना पड़ता है। अत: यदि हम अनावश्यक पानी बहायेंगे तो अगले भवों में हमें पानी की बूँद-बूँद के लिए तरसना पड़ेगा। उस समय हमारी क्या हालत होगी?

उस वेदना को हम कैसे भोगेंगे? यही सोचकर पानी सम्बन्धी अनर्थदण्ड से अवश्य बचें।

आर्थिक हानि : सामान्य रूप से अनावश्यक पानी बहाने पर भी विशेष पैसा खर्च नहीं होता, क्योंकि नल के बिल में कोई अन्तर नहीं पड़ा। चाहे आप नल को चालू भी नहीं करेंगे तो भी उतना ही बिल आयेगा जितना बिल नल में आने वाले पूरे पानी को भरने पर आयेगा। हैण्ड-पम्प, बोरिंग, जेट आदि में भी आर्थिक दृष्टि से कोई अन्तर नहीं पड़ता लेकिन यदि हमारी आदत बहुत ज्यादा पानी से काम करने की अथवा अनावश्यक बहाने की पड़ गई है तो जब नल आदि में पर्याप्त पानी नहीं आता है, गाँव में पानी के स्रोत लगभग सूख जाते हैं तब हमें पानी खरीदना पड़ता है, उस समय एक-दो डिब्बे पानी अधिक खरीदने पड़ेंगे। उस समय आर्थिक व्यय भी बढ़ता ही है। एक गिलास पानी पीने तथा आधा गिलास फेंकने की आदत है तो ट्रेन आदि में बाटल का पानी समाप्त हो जाने पर एक पाउच के स्थान पर दो पाउच खरीदने पर दूना व्यय होगा। घर में सम्पन्नता रहने तक तो इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। लेकिन आर्थिक स्थिति डाउन होने पर तो अवश्य अखरेगा।

हमारे देश-प्रदेश में पानी की कमी होने पर सिंचाई आदि के लिए अन्य

देशों/प्रदेशों से पानी खरीदना पड़ता है उस समय हमारी लापरवाही के कारण हमारे देश को आर्थिक व्यय सहना पड़ता है। वह पैसा भी हमसे अर्थात् जनता पर ही कर आदि बढ़ाकर वसूल किया जाता है। इसलिए वह आर्थिक-व्यय भी हमारा ही कहलाता है।

शारीरिक हानि : ज्यादा-ज्यादा पानी से हाथ-पैर धोने-नहाने आदि की आदत पड़ जाने पर यदि कभी शरीर में शीत का प्रकोप हो गया, कफ की बीमारी हो गयी, साइनस हो गया, प्लोरिसि, टी.बी. तथा सन्निपात जैसी भयंकर बीमारी हो गई। काला या बड़े टाइफाइड जैसी बीमारी हो गई तो बहुत पानी से हाथ-पैर धोने, दो-तीन बाल्टी पानी से नहाने की बात तो बहुत दूर पानी को छूने में भी बीमारी बढ़ने की आशंकाएँ बढ़ने लगती हैं। उस समय अपनी आदत से मजबूर हो जाने के कारण आप छुपकर पानी से हाथ-पैर धो लेंगे जिससे बीमारी को ठीक होने में महीनों लग जायेंगे हैं अथवा कभी-कभी जीवन से भी हाथ धोना पडेगा। पानी को अनावश्यक बहा देने पर कभी-कभी तो पीने के लिए भी पर्याप्त पानी नहीं मिल पाता है तो डायरिया जैसी बीमारियाँ हो जाती हैं। शरीर की नसें खिंचने लगती हैं, तड़प-तड़प कर समय व्यतीत करना पड़ता है। इस प्रकार अनावश्यक पानी बहा देने पर अनेक प्रकार की शारीरिक हानियाँ होती हैं।

व्यावहारिक हानि : जो अनावश्यक पानी बहा देता है उसके घर पर कोई अड़ोस-पड़ोस यदि कभी बड़े विश्वास के साथ आकर कहे कि भाभीजी! मुझे एक-दो घड़े नल के पानी के भरने दीजिए। कुआ/जेट का पानी बहुत खारा है इसलिए भाता नहीं है और उसमें दाल अच्छी तरह सीजती नहीं है अर्थात् कच्ची रह जाती है उसको भी हमें पानी जैसी सामान्य चीज के लिए भी मना करके उसके विश्वास को तोड़ना पड़ता है। कोई प्यासा पानी की याचना करता है तो उसे मना करना पड़ता है। संसार में कहते हैं कि लाख रुपये दे देना सरल है लेकिन किसी के सामने याचना करना कठिन है। उसने मजबूर होकर याचना भी की लेकिन उसकी कार्यसिद्धि नहीं हुई। इसीलिए कहते हैं कि माँगने वाले की अपेक्षा मना करने वाला नीचा है। हमें मना क्यों करना पड़ा? प्रमाद के कारण। यदि हम पानी को अनावश्यक नहीं फेंकते तो शायद आज हमें मना करके व्यवहार नहीं तोड़ना पड़ता। हमें आगे किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ेगी तो कौन देगा, क्यों देगा क्योंकि हमारा व्यवहार ही ऐसा है। संसार में लोग व्यवहार बनाये रखने के लिए अपनी अति आवश्यक वस्तु भी दे देते हैं और हमें इतनी हल्की चीज के लिए भी मना करना पड़ा। इस प्रकार हमें अनावश्यक पानी बहा देने से समय-समय पर व्यवहार खराब करना पड़ता है। इसलिए अनावश्यक पानी बहाने से बचकर दूसरे की सहायता करनी चाहिए।

उपसंहार

जीवन में प्राणों की रक्षा करने के लिए अति आवश्यक वस्तु जल/पानी का हम किस-किस प्रकार दुरुपयोग करते हैं, किस-किस प्रकार हमारी थोड़ी सी लोभ वृत्ति के कारण कितना पानी नाली में बह जाता है, किस-किस प्रकार से हमारे प्रमाद के कारण पानी बरबाद हो जाता है तथा किस प्रकार हम विवेक के अभाव में पानी को अनावश्यक बहा करके पाप का आस्रव कर लेते हैं। इन सबका यहाँ संक्षेप में वर्णन किया गया है। और भी अनेक स्थानों पर हम पानी का दुरुपयोग करते हैं वे सभी यहाँ नहीं लिखे जा सकते हैं क्योंकि अनन्तों जीव हैं उनके अनन्तों परिणाम, परिस्थितियाँ एवं कार्य हैं उन सबको न हम रोक सकते हैं न उनको समझा सकते हैं। एक-एक व्यक्ति भी यदि पानी का सदुपयोग करने लग जावे तो मैं सोचती हूँ हमारे देश में न कहीं पानी की कमी है और न ही कभी पानी की कमी हो ही सकती है, यदि भारत का प्रत्येक नागरिक पानी को अनर्थक बहाना/फेंकना बन्द कर दे। सार्वजनिक स्थानों पर अथवा हमारे घर, अड़ोस-पड़ोस के यहाँ बोरिंग, नल आदि से अनर्थक बहने वाले पानी को बचा ले। यह भी बहुत बड़ा धर्म है, बहुत बड़ी देशसेवा है और सबसे बड़ा दया परिणाम है। हमने मनुष्य पर्याय प्राप्त की है। इसमें हम बिना पैसे, बिना-श्रम एवं बिना समय में होने वाला यह धर्म करें तो हम दुर्गति से तो बच ही जायेंगे, हमारे कल्याण का प्रारम्भ भी हो जायेगा।

विचार सम्बन्धी

संसार के प्रत्येक व्यक्ति में वैचारिक शक्तियाँ पाई जाती हैं। सैनी जीवों में विशेष रूप से सोचने की शक्ति होती है। कोई अच्छा सोचता है कोई बुरा, कोई हितकारक सोचता है तो कोई अहितकारक, कोई धर्म रूप सोचता है तो कोई अधर्म रूप, किसी के विचार पापात्मक होते हैं तो किसी के पुण्यात्मक। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के मन में कुछ-न-कुछ विचार उठते ही रहते हैं। उन विचारों में से कुछ विचार ऐसे होते हैं जिनसे किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती है। कुछ विचार ऐसे होते हैं जिनसे कुछ प्रयोजन सिद्ध तो होते हैं लेकिन जिनको किये बिना

भी काम चल सकता है। कुछ विचार ऐसे होते हैं जिनसे प्रयोजन की सिद्धि भी होती है और जो आवश्यक भी होते हैं अर्थात् विचारों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(१) अप्रयोजनभूत विचार।

(२) प्रयोजनभूत विचार लेकिन जो अति आवश्यक नहीं हैं।

(३) प्रयोजनभूत आवश्यक विचार।

अप्रयोजनभूत विचार

जिन विचारों से देश, समाज, परिवार तथा जीवन में किसी भी कार्य की सिद्धि नहीं होती है, वे सब विचार अप्रयोजनभूत हैं।

जिन विचारों से स्व-पर हित नहीं होता, जो विचार देश, परिवार आदि के उत्थान के लिए नहीं होते हैं वे विचार अप्रयोजनभूत कहलाते हैं।

जिन विचारों से दूसरों का अहित हो, कषायों का उद्‌वेग बढ़े, अपने/दूसरे के घर/जीवन में क्लेश उत्पन्न हो, जिनके फल में पश्चाताप की अनुभूति करनी पड़े, वे सब अप्रयोजनभूत विचार हैं।

जैसे - किसी भिखारी को देखकर यह सोचने लगना कि इन्हीं भिखारियों के कारण आज हमारा देश बरबाद हो रहा है। हो गया है। ये नौजवान होकर भी कुछ काम-धाम नहीं करते, थोड़े हाथ-पैर चलावें तो आराम से खा-पी सकते हैं, अपना घर बसा सकते हैं। समझ में नहीं आता ये कैसे दूसरों के सामने हाथ फैला लेते हैं। अरे! इनको किसी के सामने हाथ फैलाने में शरम तक नहीं आती...।

किसी के वस्त्र देखकर, ''अरे ! क्या वस्त्र पहनते हैं आजकल, कुछ समझ में ही नहीं आता, लोग इतना भी नहीं सोचते हैं कि कैसे वस्त्र कब पहनने चाहिए ? कैसे वस्त्र पहनकर बाहर जाना चाहिए आदि-आदि।'' **अथवा** ''इसने तो कितने अच्छे वस्त्र पहन रखे हैं, आदि'' विचार करना। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी भी व्यक्ति **अथवा** वस्तु के बारे में, पशु-पक्षी या देव-नारकी के बारे में खोखले विचार करना, चाहे वे अच्छे हों या बुरे अप्रयोजनभूत विचार हैं।

श्मश्रू नवनीत

एक गरीब व्यक्ति था। उसके घर में भोजन-पानी की व्यवस्था भी पूरी

नहीं थी। वह गाँव के कुछ घरों से छाछ लाता था और उसी के साथ रूखी-सूखी रोटी खा लेता था। एक दिन वह छाछ पी रहा था, उस छाछ में से मक्खन के कुछ कण उसकी मूछों में चिपक गये। जब वह मुँह धो रहा था तो उसके हाथ में वे मक्खन के कण आ गये। उसने उन कणों को एक पुरानी हांडी में रख लिया। अब वह प्रतिदिन छाछ में से मक्खन के कणों को निकाल-निकालकर हांडी में रखने लगा। एक दिन वह अपनी टूटी खटिया पर लेटा था। मक्खन की हांडी छींके में टंगी थी। सर्दी का मौसम होने से उसने अपनी खटिया के पास ही थोड़ी-सी आग जला ली थी। खटिया पर लेटे-लेटे ही उसकी दृष्टि एक दम मक्खन की हांडी पर पहुँच गई। वह हांडी को देखकर विचार करने लगा - मेरी हांडी में इतना मक्खन इकट्ठा हो गया है मैं इसे बेचकर एक बकरी खरीदूँगा। उसके बच्चे होंगे। उन सबको बेचकर मैं एक भैंस खरीदूँगा। भैंस के बच्चे होंगे। कुछ ही वर्षों में मेरे घर में पाँच-सात भैंसें हो जायेंगी। मैं भैंसों का दूध, दही, घी आदि बेचकर बहुत-सा पैसा इकट्ठा कर लूँगा। फिर लोग मुझे जानने लगेंगे। उसके बाद मैं एक लड़की से शादी कर लूँगा। मेरे एक लड़का हो जायेगा। कभी लड़का रो रहा होगा। मेरी पत्नी मेरे पैर दबा रही होगी। तब मैं उससे मजाक में लात मारते हुए कहूँगा कि चल हट, तुझे पैर दबाना नहीं आता है, इस प्रकार विचार करते-करते उसने सच में लात मार दी। उसकी लात मक्खन की हांडी को लगी। हांडी अग्नि में गिर पड़ी अग्नि भभक उठी। वह गरीब झोपड़ी सहित अग्नि में जलकर भस्मीभूत हो गया; यह है बिना प्रयोजन विचार करने का फल।

अप्रयोजनभूत विचारों को संक्षेप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(१) पूजा आराधना करते समय (२) पढ़ाई करते समय (३) शादी के सन्दर्भ में।

पूजा-आराधना करते समय

कभी हम अष्ट द्रव्य से भगवान की पूजा कर रहे होते हैं, हमारे साथ अनेक लोग पूजा कर रहे होते हैं तभी मंदिर में एक लड़का भगवान के दर्शन के लिए पहुँच जाता है। वह हाथ जोड़कर भगवान की स्तुति कर रहा है। क्या उसे देखकर हम कुछ सोचते हैं? क्या उसके बारे में हमारे मन में कुछ विचार उत्पन्न होते हैं ?

हम उसे देखकर कितना सोच लेते हैं, किसका बेटा है? कहाँ से आया है? व्यापार करता है या सर्विस करता है? विवाहित है या अविवाहित? यदि अविवाहित है तो मेरे भैया, मौसी, मामा आदि की लड़की के लिए अच्छा रहेगा, आदि-आदि कितने प्रकार के विचार हम कर लेते हैं; यहाँ तक कि हम यह भी भूल जाते हैं कि भगवान के चरणों में क्या चढ़ाना था और हमने क्या चढ़ा दिया? अचानक जब हमें याद आती है कि मैं पूजा कर रहा था और हाथ में धूप देखकर लगता है कि अरे नैवेद्य और दीप चढ़ाना तो भूल ही गये...। क्योंकि जब नैवेद्य और दीप चढ़ा रहे थे हमारी शारीरिक क्रियाएँ तो सही हो रही थीं लेकिन हमारा मन उस लड़के सम्बन्धी विचारों में उलझ गया था। इसी प्रकार किसी लड़की, बहू, बेटी आदि को देखकर हम कितनी कल्पनाएँ कर लेते हैं। क्या भगवान की पूजा करते समय इस प्रकार के विचार आवश्यक हैं? क्या ये विचार पूजा के बाद नहीं किये जा सकते थे? क्या इस प्रकार के विचार किये बिना हमारी पूजा पूरी नहीं हो सकती थी? सब कुछ हो सकता था लेकिन हमारा मन जहाँ अनन्त भवों के पापों का क्षय करने गया था वहीं जाकर उसने भव-भवों तक भोगने योग्य कर्मों का बन्ध कर लिया, कितने दुःख की बात है।

कभी-कभी साक्षात् कोई आता भी नहीं है फिर भी हम पूर्व की बातों या भविष्य की कल्पनाओं में फँसकर पूजा करते-करते कहाँ-कहाँ पहुँच जाते हैं, क्या-क्या खरीद लेते हैं, आखिर इन सब विचारों की पूजा के समय क्या आवश्यकता है ? एक दिन एक व्यक्ति भगवान की पूजा कर रहा था। वह घर से आते समय पत्नी को आदेश देकर आया था कि आज मौसम अच्छा है, मैं भगवान की पूजा करके आ रहा हूँ, तुम गुड़ की पूड़ी बनाने की तैयारी करके रखना। पूजा करते-करते अचानक उसको यह बात याद आ गई, वह पूड़ी के विचारों में खो गया। इसलिए वह पूजा करते-करते गाने लगा –

दरश विशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थंकर पद पाय।
परम गुरु होय, मीठी-मीठी पूड़ी गरम नरम होय॥

यह एक व्यक्ति के जीवन की घटना है जो वचनों के माध्यम से प्रगट हो गयी थी। मन में तो किसके कितने विकल्प होते होंगे, उन्हें तो स्वयं अपने आप ही जाना जा सकता है।

कभी-कभी, हम पूजन कर रहे हैं और हमारे सामने अर्थात् जहाँ से हमें भगवान दिख रहे थे वहीं कोई आकर दर्शन करने के लिए खड़ा हो गया। उसे देखकर हमें क्या-क्या विकल्प आते हैं ? यदि विचार आते हैं कि अरे ! इसमें इतनी भी अकल नहीं है सामने आकर खड़ा हो गया, अरे, इतना तो ख्याल रखना चाहिए कि कोई भगवान की पूजा कर रहा है तो हम उसके सामने खड़े न हों.... ये अनावश्यक विचार हैं और यदि ऐसे विचार आते हैं कि अहो ! भगवान के दर्शन कितने दुर्लभ हैं ! मेरे कैसा अन्तराय का उदय आया कि मैं मंदिर में और पूजा करते समय भी भगवान को नहीं देख पा रहा हूँ... ये अच्छे विचार हैं, इन विचारों से पूर्वोपार्जित अन्तराय का नाश होगा तथा उन विचारों से पाप का बन्ध होगा। एक दिन एक व्यक्ति आया। मैंने किसी प्रकरण में कहा था कि भगवान की दृष्टि से अपनी दृष्टि मिलती हो इस प्रकार खड़े होकर दर्शन नहीं करना चाहिए, ऐसा करना अच्छा नहीं है। उसने कहा- ‘‘अरे, माताजी ! इन महिलाओं के मारे हमें तो सामने से भगवान के दर्शन का मौका ही नहीं मिलता है।’’ यह वैचारिक अनर्थदण्ड है। कई लड़कों को जब मैं कहती हूँ भैय्या मंदिर जाया करो। उनका उत्तर रहता है-‘‘माताजी ! हम मन्दिर तो चले जायें लेकिन जब हम मंदिर जाते हैं तो महिलाएँ हमें घूर-घूर कर देखती हैं, हमारी बातें करती हैं, हमारे विषय में चर्चा करती हैं...।’’ मैं उनसे पूछती हूँ- क्या तुम मंदिर में महिलाओं को देखने के लिए गये थे, महिलाओं की बातें सुनने के लिए गये थे, उनके बारे में सोचने के लिए गये थे कि वे किसके बारे में क्या विचार करती हैं, ये सब अनर्थक विचार हैं। ये विचार अन्य स्थानों पर हों तो फिर भी अधिक पाप का बन्ध नहीं होता लेकिन देवाधिदेव के सामने किये गये ऐसे विचारों का क्या फल होगा, क्या आपने कभी सोचा है?

पढ़ाई के समय

कभी-कभी बच्चे पढ़ाई करते समय इतने ख्वाब देखते हैं कि अपने ख्वाब की पूर्ति नहीं होने पर उन्हें सुसाइड करनी पड़ती है, करते हैं। कई बच्चे पढ़ते-पढ़ते ही भविष्य के अरमान संजोते रहते हैं कि मैं डॉक्टर बनूँगा, इंजीनियर बनूँगा तो ऐसा करूँगा, इस प्रकार का क्लिनीक खोलूँगा, मरीजों से इस प्रकार का व्यवहार करूँगा या मैं परीक्षा में इतने प्रतिशत अंक लाऊँगा, इतने प्रतिशत बनने पर मुझे गोल्ड मेडल मिलेगा, मेरी स्कूल/कॉलेज में प्रथम रैंक बनेगी कप मिलेगा, आदि-आदि अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करते हैं। कल्पनाओं के साथ कई बच्चे मेहनत

भी करते हैं लेकिन फिर भी जब भाग्य साथ नहीं देता है तो कभी एक नम्बर से तो कभी दो नम्बर से पीछे रह जाते हैं, अपने अरमानों की पूर्ति नहीं कर पाते हैं तो रिजल्ट देखते ही आत्म-हत्या करके मर जाते हैं। कई तो पागल हो जाते हैं। वास्तव में विद्यार्थी जीवन में जितने बुद्धिमान, अच्छे नम्बर लाने वाले बच्चे सुसाइड करते हैं उतने सैकेंड या थर्ड डिवीजन पास होने वाले नहीं करते हैं या यूँ कह लो कि कम नम्बर लाने वाले बच्चे तो कभी आत्म-हत्या करते ही नहीं हैं क्योंकि उन्हें अपनी योग्यता का ध्यान रहता है इसलिए वे लम्बे-चौड़े अरमान कल्पनाएँ नहीं करते हैं। उन्हें तो जितने नम्बर मिलते हैं उतने में ही वे सन्तुष्ट रहते हैं। वे कभी पागल नहीं होते हैं। इस प्रकार की कल्पनाएँ/विचार ही अनर्थक कहलाते हैं। यदि विद्यार्थी एक बार लक्ष्य बनाकर इन सब विचारों को छोड़ दे और समीचीन पुरुषार्थ करे तो निश्चित अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। जो विद्यार्थी ओवर कोन्फिडेन्स से काम करते हैं उनका कार्य सिद्ध नहीं होता है। इसी को कर्तृत्व कहते हैं। कर्तृत्व में अहंकार रहता है और अहंकार को ठेस पहुँचते ही व्यक्ति तिलमिला जाता है। कर्तृत्व के स्थान पर यदि व्यक्ति कर्त्तव्यपरायण बन जाए तो उसे न आत्महत्या करने की आवश्यकता होगी और न ही वह कभी पागल होगा।

शादी के सन्दर्भ में

जब लड़के-लड़की योग्य हो जाते हैं अर्थात् किशोर अवस्था में प्रवेश करते हैं तब उन्हें अपनी शादी के विषय में विचार उत्पन्न होने लगते हैं। कई लड़के सोचते हैं कि मैं तो इतनी सुन्दर लड़की से शादी करूँगा कि भाभी, मम्मी और दीदी तो उसके सामने कुछ नहीं होगी। कोई सोचते हैं कि मेरी मम्मी तो इतने सारे काम करती है लेकिन मैं तो अपनी पत्नी से कुछ भी काम नहीं करवाऊंगा, ऐश से रखूँगा। उसके दिमाग में यह विचार नहीं आ पाता कि पत्नी के आने के बाद क्या परिस्थितियाँ बन सकती हैं या बनेंगी। हो सकता है परिस्थितियों के कारण मम्मी से भी ज्यादा मेहनत पत्नी को करनी पड़े, पत्नी से करवानी पड़े। कई लड़के सोचते हैं कि हम शादी के बाद ऐसे घूमने जायेंगे। इतना-ऐसा खायेंगे, इतने शौक-मौज करेंगे आदि, अनेक-अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करते रहते हैं। कल्पनाएँ होना, कल्पनाएँ करना और कल्पनाओं में बह जाना तीनों अलग-अलग बातें हैं। कल्पनाएँ होने में टैंशन नहीं होता क्योंकि वे थोड़ी-सी देर होकर समाप्त हो जाती हैं। लेकिन कल्पनाएँ करने वाले और कल्पनाओं में बह जाने वाले का होश ही समाप्त होने लगता है, इनके प्रतिफल में व्यक्ति को नियम से दुख भोगने पड़ते हैं।

एक लड़का था। उसकी कल्पना थी कि वह ऐसी लड़की से शादी करेगा जिसका रूप भी अच्छा होगा, जो सभी कार्यों को करने में कुशल होगी, जो पढ़ी-लिखी होगी, जो बोलने-चलने में भी सभ्य-व्यवहारकुशल होगी, स्मार्ट होगी...। उसने शादी करने के लिए पचास-साठ लड़कियाँ देखीं लेकिन उसको एक भी लड़की पसंद नहीं आई। उसने अपनी कल्पनाएँ नहीं छोड़ीं। उसकी उम्र बढ़ने लगी। धीरे-धीरे लड़कियों एवं उनके माता-पिताओं के मन में यह धारणा बन गई कि उस लड़के को देखने से कोई मतलब नहीं है क्योंकि उसको तो कोई लड़की पसन्द ही नहीं आती है। साल-डेढ़ साल ऐसे ही निकल गया। आखिर उसको एक सामान्य लड़की से शादी करनी पड़ी और वह सामान्य व्यक्ति के समान जीवन भी नहीं जी पाया। उसके जीवन का आनन्द समाप्त हो गया। यह अनर्थक विचारों का दुष्परिणाम है। इससे तो अच्छा होता कि वह पहले से ही हाई-लेवल के अरमान नहीं संजोता तो उसे इस प्रकार दुःखी नहीं होना पड़ता।

इसी प्रकार लड़कियों के मन की भी कल्पनाएँ होती हैं। संभव है लड़कियों की कल्पनाएँ विशेष होती होंगी, क्योंकि लड़की अपना जीवनसाथी ढूँढ़ते समय काफी मात्रा में अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकती है लेकिन फिर भी भावी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भाग्य का सहयोग भी अति आवश्यक होता है। एक लड़की के बहुत ख्वाब थे। उसको अच्छे वेतन व ऊँची पोस्ट वाले सर्विसमेन से शादी करनी थी। उसके विचार थे कि मैं शादी के बाद अपने पति के साथ सास-ससुर से अलग रहूँगी ताकि मैं स्वतंत्रता से सूट, जीन्स आदि पहनूँगी। मुझे साड़ी नहीं पहननी पड़ेगी। जब मेरा पहला बेटा होगा तो उसे मैं अपने पापा को दूँगी क्योंकि मेरे कोई भैय्या नहीं है, आदि...। समय आया, उसकी शादी होने के पहले ही उसके पहले सपने पर पाला पड़ गया, क्योंकि उसे न सर्विस वाला लड़का मिला और न ही कोई बड़ा शहर ही मिला। वह ससुराल गयी। सबसे पहले दिन उसने अपने पति से घुमाने के लिए कहा। पति घुमा लाया लेकिन जब दूसरी बार उसने घुमाने के लिए कहा तो पति ने कहा घर बैठो, अब आगे कभी घुमाने के लिए मत कहना। कुछ दिनों के बाद वह गर्भवती हुई। उसने पति से सोनोग्राफी करवाने को कहा, सोनोग्राफी में समझ में आ गया कि गर्भ में बेटा है। वह खुश हो गई। उसकी दो कल्पनाएँ भले ही गल गयीं लेकिन उसकी तीसरी कल्पना पूरी

होने वाली थी परन्तु उसके भाग्य ने साथ नहीं दिया, उसके तीन-चार महीने का गर्भपात हो गया। उस समय ही कल्पना नहीं गयी अपितु उसके बाद उसके लड़का ही नहीं हुआ और दो लड़कियाँ होने के बाद तो ऐसी स्थिति बन गई कि बच्चे होने की संभावना ही समाप्त हो गई। उसने एक-दो बार सलवार सूट आदि पहनने की कोशिश की तो उसके पति ने कहा, यदि ज्यादा अपनी फैशन दिखाओगी तो गाँव (जहाँ उनकी खेती थी) में रहना पड़ेगा। यह सुनकर तो उसकी सभी कल्पनाएँ समाप्त हो गईं। आज वह कितनी खुश होगी, किस प्रकार घर में रहती होगी आप स्वयं सोचें। इसलिए पहले से बहुत ज्यादा अरमान नहीं संजोयें। जब जैसा मौका आवे जीवन का आनन्द लें, ताकि विशेष पाप के आस्रव से भी बच सकें और शांति से भी जीवन जी सकें।

प्रश्न : हम तो बहुत कोशिश करते हैं कि पूजन, माला, स्वाध्याय आदि धर्मकार्यों के समय ही क्यों अन्य समय में भी हमारे मन में अनावश्यक विचार उत्पन्न न हों, लेकिन हमारा मन तो कुछ समझता ही नहीं है, हम कैसे अनर्थक पापों से बचें ?

उत्तर : यह बात सही है कि यह मन बहुत चंचल है। सबका मन ऐसा ही होता है। सबके मन में धार्मिक कार्यों के समय विशेष रूप से अन्य विचार उत्पन्न होते हैं। आपके मन में हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मन में उत्पन्न हुए इन्हीं दुष्परिणामों को रोकना ही पुरुषार्थ है, धर्म है, शुभ ध्यान है। यदि मन में दुष्परिणाम उत्पन्न ही न हों तो किसको रोकना?

मन के खोटे विकल्पों को रोकने की कुछ विधियाँ

(१) आपका बच्चा जब किसी कार्यक्रम में जाने के लिए तैयार होता है तो आप उसे समझाते हैं कि देखो वहाँ तुम पानी नहीं माँगोगे, कुछ भी चीज देखकर लेने की जिद नहीं करोगे, किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं करोगे, घर आने के लिए नहीं कहोगे...। बच्चा आपकी सब शर्तें मंजूर कर लेता है लेकिन कार्यक्रम स्थल पर जाकर कभी पानी माँगने लगता है तो कभी खिलौना.....। आप उसे क्या कहते हैं देखो, तुमने घर पर क्या कहा था, फिर तुम वो ही करने लगे, ऐसा करोगे तो कल तुम्हें हम अपने साथ नहीं लायेंगे। बच्चा ५-१० मिनट तक तो शान्त हो जाता है फिर वही करने लगता है। पुन: आप उसको समझाते हैं। इसी प्रकार ५-७ बार आप कार्यक्रमों में बच्चे को ले जाते हैं, बच्चा परेशान करता है लेकिन धीरे-धीरे वह समझ जाता है। उसका परेशान करना कम हो जाता है। उसी प्रकार यदि हम भी अपने मन को क्रम-क्रम से समझावें तो सम्भव है हमारा मन काफी हद तक अशुभ, दुष्परिणाम छोड़ दे अर्थात् आपके मन में भी जब धार्मिक क्षेत्रों में खोटे/अनावश्यक परिणाम उत्पन्न होने लगें तो आप उसको कहें, देखो, यदि तुमने यह दुष्परिणाम किया तो हम तुम्हें मन्दिर नहीं लायेंगे, स्वाध्याय नहीं करवायेंगे, माला नहीं फेरने देंगे.... आपका पापभीरु, धर्मेच्छुक मन पाँच-दस मिनट के लिए अवश्य शांत हो जायेगा। बार-बार समझाने पर धीरे-धीरे हमारा मन भी आर्त्तध्यान/अनावश्यक विकल्प छोड़ सकता है। **अथवा-**

(२) जैसे ही आपको माला फेरते-फेरते कुछ विकल्प आवे तो आप सोचें-मैं विकल्प करने के लिए माला नहीं फेर रहा हूँ, मैं पापों का क्षय करने के लिए माला फेर रहा हूँ, मैं आर्त्तध्यान से बचने के लिए माला फेर रहा हूँ, इसी प्रकार मैं लड़कों/लड़कियों को देखने के लिए मंदिर नहीं आया हूँ, मैं अपना कल्याण करने के लिए आया हूँ, मैं धर्मध्यान करने के लिए मंदिर आया हूँ। क्या लड़कों को देखने से मुझे धर्म ध्यान होगा? क्या इससे आत्म-कल्याण हो सकता है? आदि-आदि विचारों से भी आप अपने मन को विकल्पों से हटा करके अपने वश में कर सकते हैं।

इसी तरह अन्य समय में भी यदि अति संक्लेश, अति भोग, लड़ाई-झगड़े आदि के भाव उत्पन्न हों तो आप सोचें-क्या मुझे मनुष्य पर्याय संक्लेश करने के लिए मिली है? क्या मुझे यह उच्च (जैन) कुल लड़ाई-झगड़ा करने के लिए मिला है? क्या भोग करते-करते मुझे तृप्ति होगी, हो सकती है? आदि-आदि विचार करके संक्लेश से बच सकते हैं अर्थात् बोधिदुर्लभ भावना का चिन्तन करके भोगों से, क्लेशों से झगड़ों से बच सकते हैं।

प्रयोजनभूत लेकिन अति आवश्यक नहीं

कई कार्यों/वस्तुओं के बारे में सोचना कुछ हद तक आवश्यक भी होता है लेकिन अति आवश्यक अर्थात् उनके बारे में बार-बार और पूरे समय जब कभी सोचना आवश्यक नहीं होता है। हाँ, कभी आवश्यकता पड़ने पर अथवा कुछ देर सोचना जरूरी होता है। अपने पद/स्थान/परिस्थिति को देखते हुए अवश्य सोचना

चाहिए। अपनी स्थिति के आगे सोचना तो अनावश्यक ही कहलाता है। जैसे देश पर किसी का आक्रमण हुआ है तो यदि आप सैनिक हैं, देश के रक्षक हैं, पुलिस स्टेशन पर काम करते हैं तो उस समय आपको देश के हित में बहुत कुछ सोचना चाहिए, करना चाहिए। लेकिन यदि आप सैनिक आदि देशरक्षकों में नहीं हैं तो बहुत सोचने की आवश्यकता नहीं है। उस समय तो आप देश की रक्षा के लिए भगवान से प्रार्थना करें, भक्ति-पूजन अर्चना करें यह आपका कर्त्तव्य है। यदि आप इतना भी नहीं करते हैं तो आप कर्त्तव्यहीन/कृतघ्न कहलाएँगे। यदि आपके पास धन है तो आपको देश की सहायता के लिए धन खर्च करने के बारे में सोचना ही चाहिए।

पढ़ाई, धन अर्जन, शादी, जन्म दिवस आदि के बारे में भी विचार करना आवश्यक है लेकिन बच्चा पाँच-साल का है तभी से उसे डॉक्टर, इन्जीनियर आदि सम्बन्धी विषयों का, कॉलेज, हॉस्टल आदि के बारे में विचार कर लेना, बच्चा दस-बारह वर्ष का ही है तभी से उसकी शादी के बारे में सोचने लग जाना, नाती-पोते, बहू से होने वाले सुखों के बारे में सोचते रहना यद्यपि अप्रयोजनभूत नहीं है क्योंकि निकट भविष्य में यह कार्य होना ही है लेकिन समय से पहले ही सोचने लग जाना, सोचते रहना अति आवश्यक तो नहीं कहा जा सकता है। कभी-कभी प्रसंगवश इनके बारे में सोच लेना प्रयोजनभूत विचार ही है।

डॉक्टर बनेगा, नहीं इनकम टैक्स ऑफिसर

एक दम्पति एक दिन बैठे-बैठे बातें कर रहे थे तभी उनको याद आया कि अरे कुछ ही दिनों में हमें तो पुत्र (संतान) की प्राप्ति होनी है। पत्नी बोली मैं अपने पुत्र को डॉक्टर बनाऊँगी। पत्नी की बात सुन पति बोला- नहीं, मैं अपने बेटे को इनकमटैक्स ऑफिसर बनाऊँगा। पति की बात सुन पत्नी झट से बोली नहीं, मैं हमेशा बीमार रहती हूँ इसलिए मैं अपने बेटे को डॉक्टर ही बनाऊँगी। पति बोला नहीं, मैं हमेशा व्यापार में परेशान रहता हूँ इसलिए मैं अपने बेटे को इनकमटैक्स ऑफिसर ही बनाऊँगा। दोनों ही अपनी-अपनी बात पर अड़े थे। धीरे-धीरे बात बढ़ गयी। बात बढ़ते-बढ़ते कमरे के बाहर और घर के बाहर आ गई अर्थात् उनकी बातों (लड़ाई) को सुनकर मुहल्ले के लोग इकट्ठे हो गये। सब लोगों ने उन्हें बहुत समझाया परन्तु उन दोनों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनकी हठ से परेशान होकर सब लोगों ने एक वकील को बुलाया। वकील ने दोनों की बात बड़ी शान्ति से सुनी और निर्णय करने के लिए उनसे पूछा- आपका बेटा कहाँ है? मैं उसकी योग्यता देखकर निर्णय दूँगा। वकील का प्रश्न सुनकर दोनों हक्के-बक्के रह गये, क्योंकि बेटा तो अभी जन्मा ही नहीं था। जब आस-पास खड़े लोगों ने सुना कि इनके अभी बेटा जन्मा नहीं है, कुछ दिनों में बेटे के जन्म लेने की सम्भावना है तो सभी ठहाका लगाकर हँस पड़े। यद्यपि ये विचार कुछ आवश्यक तो थे लेकिन इतनी जल्दी नहीं। इसलिए किसी विषय में विचार करने के पहले उसकी उपयोगिता एवं प्रयोजन को अवश्य समझ लेना चाहिए।

कई बहू-बेटियाँ, जिनके घर पर दादाजी, पापाजी, बड़े भैय्या आदि बड़े-बड़े लोग काम करने वाले हैं, सक्रियता से काम करते भी हैं फिर भी वे (बहू या बेटी) ननद-देवर, भाई-बहिन आदि की शादी, पढ़ाई, दुकानदारी आदि के विषय में विचार करने लगती हैं, संक्लेश कर लेती हैं, परेशान होने लगती हैं, ऐसे विचार कुछ समय-सीमा में तो आवश्यक हैं लेकिन ज्यादा ही विचार करने लगना अति आवश्यक नहीं है। अधिक देर एवं बार-बार ऐसे विचार करने से अपने विचारों के अनुसार कार्य नहीं होने पर संक्लेश, लड़ाई-झगड़ा, मन-मुटाव उत्पन्न हो सकते हैं। अत: यदि हमारे घर में बड़े लोग काम / विचार करने वाले हैं तो छोटों को टेंशन फ्री रहकर जीवन का आनन्द लेना चाहिए।

इसी प्रकार वृद्धावस्था में होने वाली परिस्थितियों, मौत, मौत के पहले होने वाली वेदनाओं तथा आकस्मिक घटने योग्य घटनाओं के बारे में कल्पनाएँ करके रात-रात भर नहीं सो पाना, बहू-बेटों से व्यवहार बिगाड़ लेना, रोग आदि होने के पहले ही बॉड़ी को चैक करवाकर अथवा अनुमान से औषधियों का प्रयोग करने लग जाना/प्रयोग करने के विचार करने लगना अति आवश्यक नहीं है। ऐसी स्थितियों को दिमाग में रखना, कभी-कभार विचार कर लेना आवश्यक भी है लेकिन ज्यादा ही गम्भीरता से विचार करते रहना तो प्रयोजनभूत भी नहीं अपितु एक प्रकार से अनावश्यक ही है। इसीलिए कहा है कि 'वर्तमान में जीओ', 'आज है सो राज है भविष्य को किसने देखा' अर्थात् वर्तमान के सुख को हम भविष्य की खोटी कल्पनाएँ करके क्यों दु:खी बनायें। भविष्य में जैसा होगा वैसा होगा, कम-से-कम हम वर्तमान का आनन्द तो लें, यही बुद्धिमत्ता का काम है।

इसी तरह समाज, धर्म, धर्मात्मा, साधु आदि के सुधार के विषय में, रूढ़िवादिता को समाप्त करने के बारे में, कुरीतियों के सुधार के लिए विचार करना

आवश्यक है लेकिन हमारी इस विषयक समस्याएँ नहीं हैं तो हमारा विचार करना भी तो कोई कार्यकारी नहीं है। इसीलिए तो किसी को शक्ति के बाहर काम करते हुए देखकर कहा जाता है कि ‘‘अरे भाई, ज्यादा पैर क्यों पसारते हो जितनी लम्बी रजाई है उतने ही पैर पसारो’’ अत: इन विषयों पर विचार करना यद्यपि अप्रयोजनभूत नहीं है फिर भी बहुत विचार करना अतिआवश्यक नहीं कहा जा सकता है।

प्रयोजनभूत आवश्यक विचार

प्रयोजनभूत विचारों के बारे में सभी जानते हैं। जिन विचारों से, जिसके बारे में किये गये विचारों से हमारे (हितकारक) कार्य की सिद्धि होती है, हमारे आपसी व्यवहार अच्छी तरह चलते हैं, हमारी आर्थिक व्यवस्था नहीं डगमगाती वे सब विचार प्रयोजनभूत कहलाते हैं। वैसे यदि आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय तो ये विचार भी बहुत प्रयोजनभूत नहीं हैं। प्रयोजनभूत तो आत्मकल्याणप्रद भाव ही हैं। परोपकार, जिनेन्द्रभक्ति, स्वाध्याय, तीर्थयात्रा आदि के विचार ही इस मनुष्य पर्याय में करने के योग्य हैं क्योंकि इन परिणामों से उत्पन्न पुण्य ही हमारे साथ जायेगा। हमें सुख का कारण बनेगा। सद्‌गति में ले जायेगा एवं परम्परा से मोक्षप्राप्ति में भी सहायक बनेगा।

उपसंहार

इस प्रकार देखें तो ज्ञात होगा कि हम अपने जीवन में कितने अनावश्यक विचार करते हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि पानी में कंकड़ आदि डालने पर भी शायद इतनी लहरें नहीं उठती होंगी जितने, बिना प्रयोजन के विकल्प/विचारों की लहरें हमारे मानस में उठती रहती हैं, हम उनको पकड़ ही नहीं पाते हैं। जो मन को समझाना नहीं जानते हैं या नहीं समझाते हैं अर्थात् जिनमें मन को कंट-ोल करने की क्षमता नहीं है अथवा जो मन को कंट-ोल करना ही नहीं चाहते हैं उनके तो जब-तक दूसरा कोई विकल्प उत्पन्न नहीं हो जाता तब तक पूर्व के विकल्प समाप्त ही नहीं होते होंगे। इतने एवं ऐसे विचारों से वास्तव में हमें क्या लाभ होता है, मात्र कर्मास्रव ही होता है। हम मन से, मन में उठने वाले विचारों से वर्षों के बाद खाया जाने वाला भी आज खा लेते हैं। वर्षों के बाद हम शरीर से भोग कर पायें या न कर पायें विचारों से तो आज ही भोग लेते हैं। हम भिखारी के वेष में भी चक्रवर्ती की सम्पदा का भोग करते हैं। हम उस व्यक्ति से कहीं कम नहीं लगते

जिसके बारे में यह कहा जाता है कि ‘‘सपने में राज पद पाया, उठकर मूरख चिल्लाया’’ ऐसा करके हम कोई अच्छा काम नहीं कर पाते हैं और न हमें कोई अच्छा फल ही मिल पाता है। हम तो मात्र खोखली कल्पना करके ही रह जाते हैं। उपर्युक्त वैचारिक अनर्थदण्डों को समझकर हमें अनर्थक विचारों से अवश्य बचना चाहिए।

बोलते समय

एकेन्द्रिय को छोड़कर शेष सभी प्राणियों में बोलने की योग्यता होती है, व्यवहार चलाने के लिए बोलना भी जीवन का एक आवश्यक अंग है। बोले बिना व्यक्ति का काम चल ही नहीं सकता है। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असैनी पंचेन्द्रिय तथा सैनी पंचेन्द्रिय जीवों में भी जो पशु-पक्षी हैं उनमें बोलने का व्यवहार होते हुए भी ‘नहीं जैसा’ ही है क्योंकि उनके व्यापार-व्यवसाय, रिश्तेदारी, लेन-देन आदि का कोई कार्य नहीं है इसलिए कुछ मित्रों के बीच या आपसी प्रेम वालों के साथ मात्र उनका वचन व्यापार चलता है। सामान्यत: मनुष्य उनकी भाषा को नहीं समझता है अत: उनको समझाना, उपदेश देना आदि बहुत दुष्कर कार्य है। मनुष्यों में मुख्य रूप से आपसी बोल-चाल, खाना खिलाना, आना-जाना, लेन-देन आदि व्यवहार होता है। इसी कारण मनुष्यों में लड़ाई-झगड़ा, गाली-गलौच, कटु-कठोर, असभ्य वचनों का व्यवहार भी हो जाता है। व्यक्ति कहाँ बोलना, कितना बोलना, क्या बोलना, क्यों बोलना, कैसा बोलना आदि बातों का ध्यान रखे, सोच-विचार कर बोले तो उसके जीवन में लड़ाई-झगड़ा, बैर-विरोध जैसी दु:खद घटनाएँ नहीं घट सकती हैं अन्यथा निश्चित रूप से जीवन में कुछ ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं जो इह-लोक और परलोक दोनों में दु:ख देने वाली होती हैं।

यदि कोई व्यक्ति एकान्त में बैठकर शान्ति से विचार करे कि मैं आज कितना आवश्यक बोला था और कितना अनावश्यक, कितना पूछने पर बोला था और कितनी बार मैंने बिना पूछे ही उत्तर दे दिया था। कितनी बार मैं दो व्यक्तियों के बीच में बोल गया था, मैंने कितनी बार बिना पूछे कितनी सलाह दे दी आदि... तो उसे थोड़ा अनुभव में आ सकता है कि मैं अनावश्यक भी बोलता हूँ, मैं बिना पूछे भी सलाह देता हूँ और संभवत: मुझे जितनी कड़वी घूँट पीनी पड़ती है उनमें से बहु प्रतिशत मात्र बिना पूछे और अनावश्यक बोलने से ही पीनी पड़ती है। जितने आपसी विवाद होते हैं तू-तू, मैं-मैं हो जाती है उनमें से अधिक विवादों का मुख्य कारण बिना पूछे सलाह देना, बीच में बोलना, अनावश्यक बोलना ही

है। हम थोड़ा गहराई से सोचें तो समझ में आयेगा कि वास्तव में हम उतने कर्मों का बन्ध आवश्यक बोलकर नहीं करते हैं जितने अनावश्यक बोलकर कर लेते हैं, इतनी एनर्जी हम आवश्यक बोलकर नष्ट नहीं करते जितनी अनावश्यक बोल कर समाप्त कर देते हैं। इतना सिरदर्द हम आवश्यक बोलकर मोल नहीं लेते जितना कि फिजूल बोलकर ले लेते हैं। नीतिकारों का कहना है कि ''कम खाओ और गम खाओ, न हकीम के पास जाओ, न हाकिम के पास जाओ,'' अर्थात् कम खाने वाले को हकीम (वैद्य) के पास जाने की तथा गम खाने वाले को अर्थात् कड़वा-कठोर सुनकर भी नहीं बोलने वाले / प्रत्युत्तर नहीं देने वाले को हाकिम (जज) के पास जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अब हम आगे विचार करते हैं कि वास्तव में हम कब, कहाँ और कितना अनावश्यक बोलते हैं और अनावश्यक बोलने से हमें कैसे-कैसे दुष्फल भोगने पड़ते हैं-

(१) बहू-बेटी / बेटे से (२) अपने मित्रों या परिचितों के बीच में (३) मकान बनाने में (४) बातों ही बातों में (५) वक्ताओं में (६) किसी की बुराई में (७) धार्मिक स्थलों में।

बहू-बेटी/बेटे से

आप वृद्ध हैं तो आपके घर में बहू आ गई होगी और यदि आप वृद्ध नहीं हैं तो आपके घर में १८-२० वर्ष की बेटी होगी, इतनी ही उम्र वाला आपका बेटा भी होगा। आप उनके साथ कब, कितना तथा क्या बोलना चाहिए और आप क्या, कैसा कितना बोल देते हैं, क्या आपने कभी सोचा है या क्या आपको पता है कि आपकी बात को बहू क्यों नहीं सुनती है ? बेटा आपकी बात पर ध्यान क्यों नहीं देता है? आप याद करें, आपने कितनी बार बहू-बेटी को बिना पूछे सलाह दी है। आप एक दिन में कितनी बार बेटी को कह देती हैं कि ऐसा कर लो, ऐसा नहीं करो, ऐसा क्यों करती हो आदि। यदि एक दिन में आप एक बार भी इनमें से एक बात भी कहती हैं तो आपकी बात आपकी बेटी/बहू नहीं सुन सकती है क्योंकि आपकी ये बातें उनके लिए सामान्य हैं, वे आपके मुख से हमेशा ही ये बातें सुनती रहती हैं। आप भोजन का समय होने के पहले ही यह बता देती हैं कि शाम को क्या सब्जी बनाना है। आदि....। एक महिला जैसे ही बेटा घर में आता कहती/पूछती... क्यों रे ! मंदिर गया कि नहीं, नहीं गया तो पहले मंदिर जाकर आ। उसके बाद रोटी मिलेगी। जब तक बेटा छोटा था तब तक मानता रहा लेकिन

जब वह बड़ा हो गया तब भी माँ ने अपनी टेक नहीं छोड़ी तो एक दिन बेटे ने कह दिया-''मम्मी ! मैं मन्दिर नहीं जाऊँगा। आप मुझे मंदिर जाने के लिए नहीं कहा करो।'' फिर भी माँ ने कोई ध्यान नहीं दिया तो बेटा अनसुनी करने लगा। अनसुनी करने पर भी जब माँ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो बेटे ने उस समय पर घर आना ही बन्द कर दिया जिस समय माँ घर में रहती थी अर्थात् वह सुबह माँ के मंदिर चले जाने के बाद उठता था और जब शाम/रात को माँ मंदिर चली जाती थी तब घर आता था। अब तो माँ का बेटे से बोलना, देखना सब दुर्लभ हो गया। यह है बिना प्रयोजन अनावश्यक बोलने, बेटे-बहू-बेटी को बार-बार टोका-टोकी करने का फल।

यह एक उदाहरण है। इसी प्रकार आपकी इस नुक्ता-चीनी से आपकी बहू आपसे विरक्त अर्थात् आपको अपने दिल से निकाल देगी तो वृद्धावस्था में आपकी सेवा कौन करेगा? आपकी इन बातों से आपकी बेटी स्वच्छन्द होकर उलटे-सीधे काम करने लगेगी तो आपकी कुलप्रतिष्ठा एवं धर्मात्मापने का क्या होगा?

अब लगानी पड़ी जबान पर लगाम

एक बहू ने अपने घर की एक घटना सुनाई। उसने कहा-माताजी ! मेरी मम्मी जी जब देखो कुछ-न-कुछ कहती ही रहती हैं। शादी के दो-तीन वर्ष तक तो मैं यह सोचकर सुनती रही कि बड़ों के सामने जवाब देना अच्छी बात नहीं है... लेकिन मुझे लगा कि शायद मेरे चुप रहने का मम्मीजी दुरुपयोग कर रही हैं। मैंने जवाब देना शुरू कर दिया। मैं दो-चार दिन में एक-आध बार मम्मीजी को कड़वा जवाब दे ही देती हूँ। सच में माताजी, मेरी मम्मीजी लाइन पर आ गईं। अब वह इतना किचर-किचर नहीं करती हैं। आप सोचें बिना प्रयोजन, बिना पूछे बहू को कुछ-कुछ कहते रहने का क्या फल हुआ? हर दो-तीन दिन में बहू द्वारा तिरस्कार सहना पड़ा है। अब मजबूर होकर सासु को अपनी जबान पर लगाम लगानी पड़ी, इसकी अपेक्षा बहू के कहने/व्यवहार बिगड़ने के पहले ही हम अपनी जबान को संयमित रखें, कंट-ोल में रखें तो कितना अच्छा हो।

वृद्धों के दु:ख का कारण

एक स्थान पर एक वृद्ध बहुत ही दु:खी नजर आ रहा था। उसे अधिक समय तक तो पलंग पर ही लेटा रहना पड़ता था। मुश्किल से दो-तीन घंटे घर

से बाहर निकल पाता था। उसने मुझे अपनी कहानी सुनाई। पूरी कहानी का सार मात्र यही था कि गाँव के लोग उसकी सलाह मानकर लाखों रुपये की कमाई कर लेते हैं लेकिन उसके बेटे उसकी सलाह मानना तो बहुत दूर उसे सुनना भी पसंद नहीं करते हैं। वो चाहता था कि उसके बेटे भी उसकी बात मानकर व्यापार करें, ताकि वे भी धनाढ्य बन जावें। मुझे भी उनकी कहानी सुनकर दया आ गई। मैंने उनके पुत्रों से इसके बारे में चर्चा की। बेटों ने कहा- ''माताजी! हम घर में पूरे भी नहीं घुस पाते हैं कि उसके पहले ही उनकी रामायण शुरू हो जाती है। जब तक हमारे व्यापार आदि में अनुकूलता नहीं दिखती तब तक हम कैसे माल बेच दें, कैसे माल खरीद लें। दूसरी बात, यदि चार बार उनकी बात मान लें और एक बार भी नहीं मानें तो उनको ऐसा ही लगता है कि ये लोग मेरी बात नहीं मानते हैं। उनकी बातें सुनकर समझ में आया कि बिना पूछे सलाह देना कितना कष्टप्रद है। बिना पूछे सलाह देने के कारण आज हमारे वृद्ध कितने दुःखी हैं। काश, वे बिना पूछे सलाह देना बन्द कर दें तो कितना अच्छा रहे, वे कितने सुखी हो जावें।

अब गाली दी तो

कोई-कोई पिता अपने बच्चों तक से बिना गाली दिये बात नहीं करते हैं। बात नहीं करें, वह तो बहुत दूर रहे वे बिना बात के ही बड़बड़ाते रहते हैं। कोई हो या नहीं हो, कुछ काम हो या न हो, कोई पूछे या न पूछे, सुने या न सुने, बोलना उनका काम है। घर के नीचे ही दुकान है तो फ्री होते ही घर में आकर या नीचे से बोलना शुरू कर देते हैं। एक व्यक्ति के घर में बहू आ गई थी। फिर भी ससुर जी की (बिना प्रयोजन बोलने की/गाली देने की) आदत में कोई परिवर्तन नहीं आया था। बहू ने बहुत दिन गम खाया लेकिन उसे हारकर सास-ससुर से अलग होना पड़ा। जब दूसरी बहू आई उसको भी यह सब सहन नहीं हुआ। उसने दो-चार बार ससुर जी को इन्डाइरेक्ट संकेत दिये कि वे उसके पति अर्थात् बेटे को गाली नहीं दिया करें। बहू की बातों का ससुर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो बहू एक दिन ससुर को डाँटते हुए बोली ''कक्का! तुम मेरे आदमी को गाली नहीं दोगे और आज के बाद यदि गाली दी तो....।'' पास में खड़ा बेटा भी कुछ नहीं कह पाया क्योंकि वह भी पिताजी को बहुत बार समझा चुका था। बहू की जहर से भी कड़वी बात सुनकर पिताजी को ऐसा सदमा बैठा कि उस दिन से कई बार बोलने पर भी वे नहीं बोलते थे। उसी सदमे में उनका शरीर गलता गया और कुछ ही

वर्षों में उनको मृत्यु का शिकार बनना पड़ा। बिना प्रयोजन और अनावश्यक बोलने के ऐसे ही फल होते हैं।

दूसरी बात, बिना प्रयोजन बार-बार जब कभी, जो कुछ बोलते रहने से बहू-बेटी को ऐसा लगता है कि यह तो इनका 'तकिया-कलाम' है, इनकी तो आदत ही है कुछ-न-कुछ कहने की। कुछ नहीं, अपने तो अपने काम में लगे रहो। ये अभी थोड़ा बड़बड़ायेंगे और अपने आप चुप हो जायेंगे। ऐसी धारणा बनने से वे आवश्यक और प्रयोजनभूत बातों को भी सुनना बन्द कर देते हैं, इसका प्रतिफल क्या होगा/होता है इसके बारे में विचार कर बहू-बेटे, बेटी के सामने संयमित रहें ताकि अनावश्यक तिरस्कार तथा पाप दोनों से बच सके।

मित्रों-परिचितों के बीच में

आप अपने मित्र को उसके बच्चों के लिए कितनी बार सलाह देते हैं, कैसी सलाह देते हैं। आपने कभी सोचा है? आप अपने मित्र के बच्चों को देखकर सहज ही कह देते हैं कि अरे, तुम्हारा बेटा/पोता इतना बड़ा हो गया क्या तुमने अभी तक कुण्डली भी नहीं निकाली? मैं तो अपने पोते की जल्दी ही शादी करवाऊँगा, वह तो मना कर रहा था लेकिन मैंने तो उसकी कुण्ड़ली निकलवा ही दी। बस, एक-आध साल में तो शादी कर ही देंगे। अरे, नहीं करेंगे तो प्रपौत्र का मुँह कैसे देखेंगे? कैसे सोने की नसैनी चढ़ेंगे आदि कह-कहकर अपने मित्र को पौत्र की शादी करने के लिए प्रेरित करते हैं, क्या यह अनावश्यक नहीं है? मित्र के पौत्र की शादी से आपको क्या मिल जायेगा? वृद्धों की बात तो दूर रही, कई नवजवान लड़के तक शादी के लिए बिना पैसे की दलाली करते हैं। एक दिन एक लड़के ने सुना कि शादी की दलाली (आपसी सम्बन्ध बताने/कराने) से पति-पत्नी के भोगों का छठा अंश लगता है तो उसने आकर बताया ''माताजी! मुझे तो इस काम में बहुत आनन्द आता है। मैं दो-चार कुण्ड़लियाँ तो अपनी जेब में ही रखता हूँ, बड़ा अच्छा लगता है, लेकिन अब मैं आज से इसका त्याग करता हूँ।'' उस नवजवान ने तो त्याग कर दिया पर जो वृद्ध हैं वे तो मेरे अनुमान से ऐसे काम ज्यादा करने लगते हैं क्योंकि उनके दूसरे काम कम रहते हैं या दूसरे काम करने की उनमें शक्ति नहीं रहती है।

एक वृद्ध मामा ने अपने भानजे की, जो कोई योग्य लड़का नहीं था इसलिए

उसको कोई लड़की नहीं दे रहा था, अपने बेटे की साली, जिसका मिर्गी की बीमारी होने के कारण दिमाग कम चलता था और स्वभाव भी अच्छा नहीं था के साथ शादी करवा दी। बहू ने घर में आते ही तहलका मचा दिया। भले ही लड़का अयोग्य था.... लेकिन मामा के बीच में आने के कारण उसकी मामा से लड़ाई हो गई अर्थात् मामा-भानजे में, भाई-बहिन में मन-मुटाव हो गया। मामा को जब कभी बहिन, लालाजी, भानजे आदि के व्यंग्य सुनने पड़ते हैं। बहिन का आना-जाना बन्द होने लगा और यहाँ तक कि तलाक देने की नौबत आने लगी। मामा ने भानजे की शादी कराई, क्या मिला? मात्र व्यंग्य, मनमुटाव, प्रेम समाप्त और भविष्य के लिए पाप।

प्रश्न : दूसरे की शादी के लिए सलाह देना पाप है तो यदि हमारे पड़ोस/रिश्तेदार/गाँव के लड़के-लड़की आदि के बारे में कोई रिश्तेदार आदि पूछे तो क्या उन्हें मना करना अच्छा लगेगा? क्या मना करना अव्यावहारिकता नहीं कहलाएगी?

उत्तर : (१) हाँ, उनको मना करना व्यवहारकुशलता नहीं है, अच्छी बात नहीं है लेकिन हमें इस प्रकार से काम करना चाहिए कि व्यवहार भी नहीं टूटे और पाप का बन्ध भी न हो। कोई आपसे लड़के/लड़की के बारे में पूछे तो कहना चाहिए कि भाई ! लड़का ठीक है लेकिन मुझे उसके बारे में ज्यादा जानकारी नहीं है। आज के लड़कों के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता। लड़की ठीक है लेकिन उसके नेचर के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं है। आजकल की लड़कियाँ ससुराल जाने के बाद में क्या रुतबा दिखावे कुछ नहीं कह सकते आदि...।

(२) यदि हमें किसी लड़के/लड़की के बारे में पूरी जानकारी है कि लड़का धर्मात्मा है, अच्छा है, कमाता भी है फिर भी उसको कोई विशेष बीमारी हो सकती है, दाग हो सकता है, नपुंसक हो सकता है इसलिए कहना चाहिए कि हाँ, लड़का बहुत अच्छा है, व्यसन रहित भी है, नैतिक है लेकिन फिर भी मेरे कहने से मत करना क्योंकि अन्दर की बात का मुझे भी कोई पता नहीं है, आप स्वयं देखो। शादी के बाद यदि खराब निकल गया, कुछ कमी निकल गई तो मेरी कोई जिम्मेदारी नहीं है, आप पहले ही ठोक-बजाकर देख लो।

मकान बनाने में

किसी का प्लॉट देखकर कह देना कि तुम तो पैसा उधार लेकर तीन-चार मंजिल का मकान बनवा लो। किराये देना, प्रतिमाह १०-१५ हजार का किराया मिल सकता है, मिलेगा...। आपके कहने से उसने मकान बनवा लिया, किराये भी दे दिया लेकिन क्या मकान-प्रवेश के समय आपको याद भी किया? किसी के मकान के सामने थोड़ी सी खाली जगह देखकर आपने कह दिया, अरे ! अपनी इस जगह में एक छोटा सा बगीचा लगा लो। बीच में थोड़ी दूब लगा लो, इधर दो चार गमले रख दो, यहाँ गुलाब का पौधा लगा लो, यहाँ गिलकी, लौकी, तुरोई आदि के बीज डाल दो उनकी बेलों को इस प्रकार सपोर्ट देकर मण्डप सा बना लेना, सुन्दर लगेगा, खुशबू भी मिलेगी और सब्जियाँ भी, आदि-आदि सलाह दे देने से आपको उनमें से क्या-क्या मिलेगा ? कुछ भी नहीं, मात्र वनस्पति उगाने, खींचने, कटिंग करने आदि के पाप का छठा अंश। मकान बनाने में होने वाले पाप-आरम्भ का छठा अंश, परिग्रह संचय का पाप।

एक दिन एक महिला एक श्रावक के घर साधु को आहार देने गई। उसके घर की सीढ़ियाँ बहुत ऊबड़ खाबड़ बेढ़ंगी थी। उसने गृह स्वामी से कहा- भाई साहब ! अबकी बार आप कुछ करवायें या न करवायें ये सीढ़ियाँ जरूर सुधरवा लेना। आप सोचें, उस महिला का वापस उस घर में जाने का काम पड़े या न पड़े, उसके कहने से गृह मालिक सीढ़ियाँ बनवाये या न बनवाये, उसको तो सीढ़ियाँ बनवाने में होने वाले पाप का छठा अंश लग ही गया।

कभी पानी की समस्या देखकर हम कह देते हैं कि अरे ! तुम्हारे कौनसी कमी है; एक बोरिंग/हैण्डपम्प/जेट लगवा लो, कुआ खुदवा लो, जिन्दगी भर के लिए आराम हो जायेगा। घर में पानी ही पानी हो जायेगा। इसी प्रकार किसी किसान/जमींदार या सेठ को कहना कि तुम अपने खेत में बोरिंग करवा लो। एक वर्ष में तीन फसल आयेगी। आस-पास के खेतों में सिंचाई के लिए पानी बेच भी देना...। यह बात अलग है कि हमारे घर/खेत में बोरिंग की आवश्यकता है, अत: खुदवाया फिर भी इतना पाप नहीं लगेगा लेकिन दूसरे के यहाँ खुदवाया भी नहीं, मात्र सलाह दी उसका भारी पाप लगेगा। क्योंकि अपने घर का काम करना आवश्यक है, जबकि दूसरे को सलाह देना भी आवश्यक नहीं है।

बातों-ही-बातों में

कभी-कभी तो मित्रगण बैठे-बैठे कैसी-कैसी खोटी कल्पनाएँ कर लेते हैं और बातों-ही-बातों में लड़ पड़ते हैं, मनमुटाव कर लेते हैं, हाथा-पाई पर उतर आते हैं। एक स्थान पर दो किसान रहते थे। उनमें खासी मित्रता थी। एक दिन दोनों बैठे-बैठे बातें कर रहे थे। बात-ही-बात में एक ने कहा ‘‘मित्र! मैं अबकी बार अपने खेत में ईख बोऊँगा।’’ दूसरे ने कहा, ‘‘मैं तो अबकी बार एक भैंस खरीदूँगा।’’ पहले ने कहा, ‘‘तुम भैंस लाना जरूर लेकिन उसको बाँधकर रखना, ऐसा न हो कि वह मेरे खेत में घुस कर ईख खा जाये।’’ दूसरे ने तमक कर कहा, ‘‘भाई, भैंस जानवर है, आदमी तो है नहीं, जो कहना मान ले। मैं यदि पूरे दिन उसको बाँध कर रखूँगा तो वह भूखी नहीं रहेगी? उसको कम-से-कम चरने के लिए तो छोड़ना ही पड़ेगा। छोड़ने पर उसका मन हुआ तो वह ईख भी अवश्य खायेगी।’’ यह सुना तो पहला झल्ला कर बोला- ‘‘तो बस, अब तू भैंस ला चुका।’’ दूसरे ने मुँह मटकाकर उत्तर दिया- ‘‘तो बस, तू भी ईख बो चुका।’’ पहला चट से अंगुली द्वारा जमीन पर लकीरें डालते हुए बोला, ‘‘तो मैं तो ईख बो चुका। तू अपनी भैंस छोड़।’’ दूसरे ने वहीं से एक कंकड़ी लेकर उन लकीरों पर डाल दी और बोला ‘‘ले, मैं अपनी भैंस छोड़ चुका, कर ले तुझे जो करना है?’’ दोनों एक-दूसरे पर टूट पड़े और बुरी तरह घायल हो गये। व्यर्थ की बातों से लड़ाई के अलावा होता भी क्या है?

वक्ताओं में

कभी-कभी तो प्रौढ़-विद्वान वक्ता तक भी इस बात को भूल जाते हैं कि मुझे मंच पर किस समय पर कितना और क्या बोलना चाहिए। जो मैं बोल रहा हूँ उसको जनता पसन्द कर रही है या नहीं? मेरे वक्तव्य को सुनते हुए कहीं कोई बार-बार घड़ी का काँटा तो नहीं देख रहा है, इन सब बातों का ध्यान रखे बिना बोलते जाने से कभी-कभी श्रोतागण तालियाँ बजाने लगते हैं। कभी कोई वक्तव्य बन्द करने का संकेत देने के लिए घड़ी लाकर सामने रख देता है तो कभी खाँसकर या जयकारा लगाकर श्रोता भाषण बन्द करने के लिए परोक्ष रूप से कह देता है। कभी वक्ता ध्यान नहीं देता है तो उसके बोलते रहने पर भी आधी जनता खिसक जाती है, फिर भी यदि वक्ता बोलना बन्द नहीं करता है तो क्या वह अनावश्यक नहीं बोल रहा है? क्या वह अपनी एनर्जी को व्यर्थ खर्च नहीं कर रहा है? क्या वह अपने आप का तिरस्कार नहीं करवा रहा है?

एक लड़के ने बताया कि माताजी! मैं जब ननिहाल जाता हूँ तो वहाँ मेरे एक मामा हैं, वे इतनी बातें करते हैं कि सुन-सुनकर सिर ही दर्द करने लगता है। मैं तो उन से इतना छुपता हूँ कि वे जब तक घर में रहते हैं मैं कमरे से बाहर नहीं निकलता हूँ, कभी निकलता हूँ तो बहुत सोच-समझ कर..। एक भानजा जो मामा के लिए समर्पित रहता है, चौबीस घंटे मामा के पास रहना चाहता है उसके ऐसे भाव क्यों हुए? मामा के अनावश्यक बोलने से। हम भी सावधान रहें, कहीं हम तो ऐसा नहीं कर रहे हैं।

किसी की बुराई में

सामान्य व्यक्तियों की बात तो बहुत दूर रही अर्थात् अड़ोस-पड़ोस, रिश्तेदार, जाने अनजाने व्यक्तियों की निन्दा तो हम जब तब दिन में पच्चीसों बार करते ही रहते हैं। हम साधु-संतों, महापुरुषों की निन्दा करने से भी नहीं चूकते हैं। कभी कोई कह दे कि अरे ! अपने को क्या करना है किसी की निन्दा करके? तो हम जल्दी से कह देते हैं कि हम किसी की बुराई नहीं करते, हम तो बस एक बात कह रहे थे। आप सोचें, बुराई किसे कहते हैं? बुराई कब की जाती है? बुराई करते समय हमारे मस्तिष्क एवं मन की क्या स्थिति होती है? आदि-आदि बातों की ओर दृष्टि डालें तो स्वयं समझ में आता है कि वास्तव में हम बातें नहीं बुराई कर रहे थे। दूसरे के दोषों को कहना, उनके अवगुणों को इंगित करके उनकी बातें करना ही तो बुराई है। क्या ऐसी बातें करते समय हमें यह लगता है कि कोई उनके पक्ष वाला सुन तो नहीं रहा है? अरे, कहीं बात उन तक नहीं पहुँच जाये... आदि सोचकर हमें भय की अनुभूति नहीं होती, क्या उनके परिचित किसी के आते ही हम अन्दर से काँप नहीं जाते हैं। उस प्रकरण को पलट नहीं देते हैं? उस बात को गौण नहीं कर देते हैं? यदि हम सही कर रहे थे तो हमें ऐसा क्यों करना पड़ा? ऐसा किया या ऐसा करने का विचार भी आया तो समझना चाहिए कि हम किसी की बुराई कर रहे थे। क्या बुराई करना आवश्यक है, फिर किसी के अवगुणों को किसी दूसरे के सामने कह देने से लाभ ही क्या होता है, मात्र पाप का बन्ध ही तो होता है। सामने वाला अर्थात् जिसकी हम बुराई कर रहे हैं वह तो सुधर ही नहीं पाता। उसे तो पता ही नहीं चलता है कि मैं कुछ गलती भी कर रहा हूँ। निन्दा करने की

अर्थात् दूसरे के अवगुण देखने की दृष्टि हमारी सहज रूप से बनी हुई है। हमें अच्छी-से-अच्छी वस्तु में भी कुछ-न-कुछ अवगुण दिख ही जाता है। दुनिया की दृष्टि चन्द्रमा की शीतलता, उज्ज्वलता, धवलता को नहीं देखती उसमें लगे छोटे से कलंक को देखती है। यही कारण है कि हम दूसरे की निन्दा कर लेते हैं। यदि व्यक्ति मात्र दूसरे की निन्दा करना भी छोड़ दे तो भी काफी पापों से बच सकता है।

धार्मिक स्थलों पर

हम धार्मिक स्थानों मंदिर, तीर्थ-अतिशय क्षेत्रों पर या गुरुओं के दर्शनार्थ या यात्रा आदि करने जाते हैं तो वहाँ पर भी हम कितनी अनर्थक बातें कर लेते हैं। लोक में कहा जाता है कि सबसे ज्यादा अच्छी-बुरी, आये-गये की, जन्म-मरण की चर्चाएँ यदि जानना है, तो मंदिर में चले जाओ अथवा मंदिर जाने वाले भक्तों से पूछ लो। कोई खबर यदि पूरे समाज में फैलानी हो तो मंदिर जाने वालों से कह दो। आपकी खबर बहुत जल्दी पूरे समाज में फैल जायेगी। इसका अर्थ क्या है कि हम घर में इतनी अनावश्यक/अनर्थक बातें नहीं करते जितनी मंदिर में करते हैं। वास्तव में देखा जाय तो मंदिर में बातें करने की आवश्यकता ही कहाँ है? नीति तो यह है कि मन्दिर की बातें घर में करो तो पुण्यास्रव होगा और घर की बातें मंदिर में करो तो महान् पाप का आस्रव होता है। हम इसका उलटा करते हैं। हम मंदिर की बातें तो घर में कभी नहीं करते, लेकिन घर की बातें मंदिर में अवश्य कर लेते हैं। इसका फल हमें क्या मिलेगा, यह सोचकर कम-से-कम धार्मिक स्थलों पर तो विकथाएँ/अनावश्यक बातें करना छोड़ ही देना चाहिए।

आपकी इन अनर्थक बातों से ही हमारी नयी पीढ़ी के लड़के-लड़की, आपके बेटे-बेटी यह कहते हुए सुने जाते हैं कि हम मंदिर जाते हैं तो महिलाएँ हमें देखती हैं, हमारी बातें करती हैं इसलिए हमें मंदिर जाना अच्छा नहीं लगता। हम मंदिर नहीं जायेंगे। अथवा जब वे विवाह योग्य हो जाते हैं तो मंदिर जाना इसलिए प्रारम्भ कर देते हैं कि ''हम मंदिर जायेंगे तभी तो महिलाएँ हमें पहचान पायेंगी और तभी तो समाज के लोगों को यह समझ में आयेगा कि मैं भी एक योग्य लड़का हूँ, कमाता हूँ, पढ़ा-लिखा हूँ, मेरी शादी नहीं हुई है, मैं शादी के योग्य हो चुका हूँ।'' लड़की की अपेक्षा ''मैं भी एक सुन्दर-समझदार लड़की हूँ, मैं भी धर्म करती हूँ.... शादी के योग्य हो चुकी हूँ।'' धार्मिक-स्थलों में बातें करने की आपकी आदत के कारण हमारी युवा पीढ़ी जिनेन्द्र भगवान के दर्शन जैसे पवित्र कार्य से वंचित रह गयी। तथा गयी भी तो उसको भगवान के दर्शन करने का फल नहीं मिला। मंदिर जाकर भी उसने अपने आप को ठग लिया। उसके पाप का एक हिस्सा आपको भी मिलेगा और आपने धर्म-स्थान पर जो बातें की उसका पाप तो आपको लगा ही है।

आपकी इन अनर्थक चर्चाओं के कारण कई लोग ऐसा कहते हुए भी सुने जाते हैं कि मंदिर में जाकर इधर-उधर की बातें करके पाप कमाने की अपेक्षा तो मंदिर नहीं जाना ही अच्छा है, हम मंदिर नहीं जाते हैं तो कम-से-कम ऐसा पाप भी तो नहीं करते हैं....। हमारी अनर्थक बातों से धर्म की कितनी हँसी हुई, धर्मात्मा लोग कितनी हीन दृष्टि से देखे गये, इस सबका पाप किसको लगेगा? आप यह भी नहीं सोचें कि एक मैं मंदिर में बात करना बन्द कर दूँगी तो क्या मंदिर में बातें होना बन्द हो जायेंगी, हमारी नयी पीढ़ी मंदिर जाने लगेगी, हमारे धर्म/धर्मात्मा की हँसी होना बन्द हो जायेगी? यह सब होगा या नहीं होगा, मंदिर में बात नहीं करने वाला पापों से तो बच ही जायेगा। तथा एक व्यक्ति भी यदि आपका आदर्श लेकर मंदिर में बातें करना बन्द कर देगा तो कितना बड़ा लाभ हो जायेगा। आपके समान यदि प्रत्येक व्यक्ति बातें करना बन्द कर देगा तो हमारे धर्म-स्थलों में कितनी शान्ति हो जायेगी। हमें धर्म क्रिया करने का कितना आनन्द आने लगेगा...। और यह सोचकर कि एक मेरे बातें बन्द करने से क्या हो जायेगा, सभी लोग मंदिर में बातें करते ही रहेंगे तो क्या हमारे धर्मस्थल सब्जी मंडी जैसे नहीं लगने लगेंगे? हमें घर में रहने की अपेक्षा धर्मस्थलों पर जाने पर होने वाला लाभ मिल पायेगा? आदि-आदि विचार कर हमें अनावश्यक बातें करना तो छोड़ ही देना चाहिए।

उपसंहार

संसार में व्यक्ति के पास वचन/बोलने की एक ऐसी शक्ति है जिसके माध्यम से सामने वाले की व्यथाओं को बढ़ाया भी जा सकता है और नष्ट / कम भी किया जा सकता है। वचनों के माध्यम से भगवान की भक्ति, गुणगान, पूजन, पाठ आदि करके पुण्यार्जन भी किया जा सकता है तो वचनों से ही गाली-गलौच, व्यंग्य-कड़वा, कठोर, झूठ-वंचना आदि करके पापार्जन भी किया जा सकता है। वचन शक्ति से ही हमें भगवान जिनेन्द्र देव की देशना मिली, उस देशना से ही संसारी

प्राणियों को धर्म करने की विधि समझ में आई। वचनों के माध्यम से ही संसार के बहु प्रतिशत कार्य होते हैं, करते हैं- कौआ किसी से कुछ लेता नहीं है और कोयल किसी को कुछ देती नहीं लेकिन कौए की आवाज को सुनकर सब लोग दूर भागते हैं, पत्थर मार कर उसको भगाते हैं और कोयल की आवाज को सब प्रेमपूर्वक सुनते हैं। उसका कारण कोयल की बोली का मीठापन है। हम इन ही वचनों से किसी की प्रशंसा करके यश लूट सकते हैं और इन्हीं वचनों से किसी की बुराई करके आफत मोल ले सकते हैं, दुर्गति के पात्र बन सकते हैं। उपर्युक्त प्रकरण को पढ़कर/समझकर हम वचनों का सदुपयोग करें, पापार्जन से बचें, मीठा, हित-मित बोलें और वचन शक्ति की क्षमता को सार्थक करें।

वस्तुएँ रखने में

इस संसारी प्राणी को अपनी गृहस्थी चलाने के लिए, बच्चों का पालन-पोषण करने के लिए तथा अपने जीवन का निर्वाह एवं निर्माण करने के लिए अनेक प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। उन सब वस्तुओं को हम चार भागों में बाँट सकते हैं-

(१) अति आवश्यक वस्तुएँ (२) आवश्यक वस्तुएँ

(३) अनावश्यक वस्तुएँ (४) जो न अनावश्यक हैं और न अति आवश्यक।

अति आवश्यक वस्तुएँ

जिन वस्तुओं के बिना हमारा घर वन/जंगल जैसा लगे, जिनके बिना हमारे जीने में ही बाधा उत्पन्न होने लगे वे अति आवश्यक वस्तुएँ होती हैं। जैसे- चूल्हा/गैस, थाली-कटोरी, चिमटा, ४-५ जोड़ी कपड़े, सोने के लिए बिस्तर-चटाई, रजाई, दीपक/लालटेन/लाइट, रहने के लिए मकान, व्यापार- व्यवसाय के लिए दुकान/सर्विस करना आदि। प्रात: काल सर्व प्रथम अपने इष्ट देव/गुरु का स्मरण करने के लिए उनकी तस्वीर, माला, आसन, जीवन विकास के लिए सत्साहित्य की २-४ पुस्तकें, एक छोटी सी दान पेटी, गेहूँ, दाल-चावल आदि जिनके बिना भूख शांत नहीं हो सकती है, ये सब अति आवश्यक चीजें हैं।

आवश्यक वस्तुएँ

जिनके बिना घर पर आये हुए अतिथियों/मेहमानों का आदर-सत्कार,

सम्मान नहीं हो सकता है, जिनके बिना मित्रों/परिचितों के बीच में हँसी का पात्र बनना पड़ता है, जिनके बिना समय आने पर किसी की सहायता करने में पीछे हटना पड़ता है, वे सब आवश्यक वस्तुएँ कहलाती हैं। जैसे काच, कंघा, साबुन, ब्रूश, २-३ घड़े, टंकी, बाहर जाते समय या किसी फंक्शन में जाते समय अथवा त्यौहार आदि के समय पहनने के लिए नये कपड़े, मिठाई-नमकीन आदि बनाने के लिए मशीन, साँचा आदि आवश्यक वस्तुएँ हैं। यद्यपि इनके बिना भी काम चल सकता है फिर भी इन वस्तुओं को नहीं रखने वाला वैरागी या विद्यार्थी ही होता है। जिसके यहाँ कोई भोजन आदि की आशा लेकर नहीं जाता है, उसके घर में ये वस्तुएँ नहीं होती हैं तो भी काम चल जाता है। लेकिन जिसके घर में धर्मपत्नी है, बच्चे हैं, माता-पिता आदि पारिवारिक सदस्य हैं, उनके यहाँ इन वस्तुओं का होना आवश्यक है।

अति आवश्यक एवं आवश्यक वस्तुओं को रखना एक प्रकार से गृहस्थ का धर्म माना गया है लेकिन उन अति आवश्यक एवं आवश्यक वस्तुओं को भी सीमा का उल्लंघन करके या उनमें अति आसक्ति करके भव बिगाड़ा जा सकता है, इस-भव तथा परभव दोनों के लिए दु:ख का बीज बोया जा सकता है।

अनावश्यक वस्तुएँ

जो वस्तुएँ हमारे घर में किसी भी अपेक्षा आवश्यक नहीं हैं, जिनको रखने में मात्र श्रम ही करना पड़ता है, जिनको हमारा मन केवल लोभ अथवा ईर्षा के वशीभूत होकर छोड़ना नहीं चाहता है वे सब वस्तुएँ अनावश्यक कहलाती हैं।

उपयोगी वस्तुओं को अधिक मात्रा में इकट्ठा करना भी अनावश्यक वस्तु की श्रेणी में ही आता है। बिना विचार किये किसी वस्तु को अधिक अथवा थोड़ी भी रखना अनावश्यक के अन्तर्गत ही है।

गमन चूमती कल्पनाओं के कारण ही हम जिनसे चिपके रहते हैं वे सब अनावश्यक वस्तुएँ हैं। मेरे अनुमान से इतना पाप, इतनी सार-सम्हाल हमें आवश्यक वस्तुओं की नहीं करनी पड़ती है जितनी हमें अनावश्यक वस्तुओं की करनी पड़ती है। हमारे घर में सैकड़ों वस्तुएँ ऐसी होंगी जिन्हें हम सम्हाले रखते हैं। कई बार हमारी आत्मा उन सब वस्तुओं को अलग करने के लिए कहती है लेकिन हमारी कषायें, हमारा लोभी मन उन वस्तुओं को छोड़ने की अनुमति नहीं देता है। कभी-

कभी हम अपने मन को समझा कर उन वस्तुओं को छोड़ने के लिए तैयार करके उन वस्तुओं को बाहर निकालकर रख देते हैं, देने के लिए किसी योग्य पात्र को ढूँढते हैं। तब तक तो हमारा मन बदल जाता है, हम वे वस्तुएँ उठाकर फिर से यथास्थान रख देते हैं। वे सब वस्तुएँ तब समझ में आती हैं जब हम दीपावली की सफाई करते हैं। सफाई करते समय हम एक-एक चीज को अनुपयोगी समझते हुए निकालकर अलग रखते जाते हैं। उन अलग रखी हुई वस्तुओं का घर की सफाई पूरी होने तक ढेर लग जाता है। जब सफाई पूरी होती है हम उन चीजों में से एक-एक चीज उठाते हैं। उसे फटकते हैं, साफ करके जब देखते हैं तो हमारा मन भविष्य की कल्पनाओं में झूलने लगता है। वह सोचता है ''अरे ! यह चीज तो उस समय काम आ सकती है, ऐसा हो जाने पर इस चीज का उपयोग हो सकता है, किया जा सकता है।'' यही सब कुछ सोचकर हम पूरे ढेर की एक-एक करके सभी वस्तुएँ फिर से रख लेते हैं। एक वर्ष के बाद पुन: दीपावली आती है। उसी सामान को फिर से यही सोचकर कि अबकी बार इसमें से एक भी वस्तु को नहीं रखेंगे, सभी वस्तुएँ अलग कर ही देंगे लेकिन हमारा लालची मन फिर से उस आत्मा को अपने चंगुल में फँसा लेता है। आत्मा इसकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आ जाती है और हम उन सभी वस्तुओं को फिर से रख लेते हैं। ऐसा वर्षों तक होता रहता है। बस, उन्हीं वस्तुओं को अनावश्यक की श्रेणी में रखा जा सकता है।

फटे कपड़े भी काम के

कई महिलाएँ अपने पुराने सूती कपड़ों की गाँठ या पेटी खोलती हैं, उनको फटक कर देखती हैं, कपड़े लगभग फटे हुए ही होते हैं। उन्हें देखकर आत्मा से आवाज आती है- अरे! फेंक दिये जायें ये। इनकी तो फालतू बेगार ही करनी पड़ती है। यह सुनते ही मन कहता है- अरे, बेगार की क्या बात है, जब बहू या बेटी की डिलीवरी होगी तब काम आयेंगे। इस मन ने यह तक नहीं देखा कि अभी तो बेटा/बेटी १५, १७ वर्ष के भी नहीं हुए हैं। कब बेटा बड़ा होगा, कब बहू आयेगी और कब उसके बच्चे होंगे। बहू के डिलीवरी होगी तब तक फटे कपड़े सम्हाल कर रखना उचित है ? कई महिलाएँ अपने बच्चों के पहनने के कपड़े जब छोटे या चुस्त हो जाते हैं तो उन्हें यह सोच कर रख लेती हैं कि जब नाती-पोते होंगे तो उनको पहनाएँगे। वे इतना तक नहीं सोच पाती हैं कि क्या आने वाली बहू अपने बच्चे को ये मेरे सम्हालकर रखे गये पुराने कपड़े पहनाना पसन्द करेगी।

मेरे कहने पर यदि उसने कपड़े पहनाने के लिए मना कर दिया तो मुझे कैसा लगेगा...। यदि उसने नहीं पहनाए तो आपके सम्हालने की मेहनत का क्या होगा, उनको सम्हालने में जो आरम्भ-सारम्भ हुआ, पाप का बन्ध हुआ/होगा उसका फल किसको मिलेगा? फिर जब तक आपका पौत्र/नाती-पौत्री आदि होंगे तब तक क्या ऐसे कपड़ों की फैशन ही चलती रहेगी, क्या होने वाले बच्चों के मम्मी-पापा के पास इतना पैसा भी नहीं होगा, जिनसे वे अपने बच्चों के लिए कपड़े खरीद पावें....। एक बार एक लड़के ने बताया, ''माताजी! मेरी मम्मी मेरे जो कपड़े छोटे हो गये हैं, मेरे से छोटा कोई भाई-बहिन नहीं है उनको सम्हाल कर रखे है। कभी उनको मैं अलग करने के लिए कहता हूँ तो कहती है भैया/दीदी का बेटा जब बड़ा हो जायेगा तब ये काम आयेंगे, इतने महंगे भाव के कपड़े/बूट/सैंडिल आदि कैसे फेंक दूँ तू क्या समझता है...।''

प्रश्न : क्या सभी पुराने कपड़े अनावश्यक ही होते हैं ? हमने तो सन्तों के उपदेशों में सुना है कि फटे-पुराने कपड़ों से भी हम शिक्षा ले सकते हैं।

उत्तर : हाँ, सन्तों की वाणी कभी झूठी नहीं होती है, हमारे घर में रखे फटे-पुराने कपड़ों से भी हम शिक्षा ले सकते हैं, उन्हें एकान्त से निरर्थक नहीं कहा जा सकता है। यदि हम उन्हीं वस्तुओं को देखते समय अपनी दृष्टि को बदलकर उनको अपने जीवन-विकास के लिए गुरु के रूप में स्वीकार कर लें तो उनको घर में रखना भी सार्थक हो सकता है।

फटे कपड़े भी गुरु बने

एक लड़के ने बहुत गरीब परिवार में जन्म लिया था। एक बार वह आजीविका की खोज में एक शहर में पहुँचा। वहाँ उसने एक सेठ के यहाँ पर रोटी, कपड़ा और रहने के लिए स्थान को वेतन के रूप में स्वीकार कर नौकरी कर ली। नौकरी के सबसे पहले दिन सेठ ने उसको कुछ पैसा देते हुए कहा जाओ, पहले थोड़े ढंग के कपड़े खरीदो, बाल बनवाओ और नहा-धोकर आओ। उसने सेठ से पैसे लेकर सबसे पहले स्टूडियो में जाकर एक फोटो खिंचवाई। एक पेटी, ताला और नये कपड़े खरीदे। पेटी में अपनी फोटो, फटे वस्त्र तथा टूटी चप्पल आदि रखकर अपने कमरे (सेठ ने उसे रहने के लिए जो स्थान दिया था) में सुरक्षित स्थान पर रख लिया। धीरे-धीरे वह अपनी ईमानदारी और अच्छे व्यवहार से सेठ का प्रिय बन गया। सेठ

ने उसके कार्यों से प्रभावित होकर उसे सबसे बड़ा मुनीम बना दिया। उसको भी अन्य मुनीमों की भाँति पैसा मिलने लगा। वह कम-से-कम पैसों में अपने भोजन-वस्त्रादि की व्यवस्था कर लेता था, शेष पैसे अड़ोस-पड़ोस तथा गाँव के गरीब लोगों की सेवा में लगा देता था। मुनीम जी की दान-वृत्ति से गाँव के बहु प्रतिशत लोग उसको पहचानने लगे, उसकी प्रशंसा करने लगे।

मुनीम जी की प्रशंसा एवं लोकप्रियता को देखकर दूसरे मुनीमों के मन में ईर्षा परिणाम उत्पन्न हो गये। उन्होंने सेठ से उसकी झूठी शिकायत कर दी। सेठ ने उनकी बातों को टाल दिया। लेकिन जब तीन-चार बार अलग-अलग लोगों ने शिकायत की कि मुनीमजी सेठजी के खजाने में से पैसा उड़ाकर दान करते हैं और सेठजी ने यदि कुछ ध्यान नहीं दिया तो निश्चित ही थोड़े दिनों में सेठजी का खजाना खाली हो जायेगा....। अनेक बार शिकायतें सुनने से सेठजी के मन में भी संदेह उत्पन्न हो गया। वे अपना संदेह दूर करने के लिए एक दिन प्रात: काल ही अचानक मुनीमजी के कमरे में पहुँच गये। अकस्मात् सेठ जी को आता देख मुनीम जी घबरा गये। वे उस समय पेटी का ताला खोलकर देख रहे थे। सेठजी को आता देख वे जल्दी से ताला बन्द कर पेटी को आड़ में करके खड़े हो गये और सेठ जी को बैठाकर वे भी उस पेटी पर बैठ गये। सेठजी ने पूछा-मुनीम जी ! इस पेटी में क्या है? मुनीम – सेठजी ! इसमें कुछ नहीं है। सेठजी – मुनीमजी ! आज मैं आपकी यह पेटी जरूर देखूँगा। मुनीमजी हाथ जोड़कर बोले, सेठजी ! इसमें देखने जैसी कोई चीज नहीं है। यह सुन सेठजी की शंका और भी बढ़ गई। अन्तत: सेठजी ने दबाव डालकर मुनीम जी से पेटी खुलवा ही ली।

पेटी में रखे हुए फटे कपड़े, फोटो आदि देखकर सेठजी तो अवाक् रह गये। आश्चर्यचकित होते हुए बोले, मुनीम जी! आप इतने बुद्धिमान हो फिर इतनी अच्छी पेटी में ये फटे-पुराने चीथड़े क्यों भर रखे हैं? मुनीमजी नमृता से बोले ''सेठजी! आप इन्हें चीथड़े नहीं कहें, ये तो मेरे गुरु हैं, मैं इनको हमेशा दोनों टाइम देखता हूँ और सोचता हूँ कि जब मैं यहाँ आया था तो मेरे पास कुछ नहीं था। मैं ये फटे कपड़े पहनकर आया था, ये टूटी चप्पलें मेरे पैरों में थीं। मेरे हाथ-पैर,चेहरा, बाल आदि ऐसी स्थिति में थे। कहीं मैं पैसा प्राप्त करके मदोन्मत्त तो नहीं हो गया हूँ, कहीं मुझे पैसों का गर्व तो नहीं आ गया है...। यही कारण है कि मैं कभी

रोटी पर घी नहीं लगाता, सब्जी को छोंकता नहीं हूँ, दूध नहीं पीता हूँ, अच्छी क्वालिटी के वस्त्र नहीं पहनता हूँ क्योंकि इनको देखकर मुझे विचार आता है कि जब मेरे पास पैसा नहीं था तब भी तो बिना सब्जी के रूखी-सूखी रोटी खाकर भी जीवित था, बिना दूध पिये भी स्वस्थ था, अब क्यों नहीं....।'' सेठजी अपने मुनीमजी की सोच से बहुत प्रभावित हुए। आप भी यदि अपने अटाले में से किसी वस्तु को अपना गुरु बना सकते हैं तो बहुत अच्छा, आप अवश्य फटी-टूटी वस्तुएँ इकट्ठी करके रखें और यदि नहीं बना सकते हैं तो व्यर्थ की वस्तुएँ रखकर अनर्थक पाप सिर पर न लादें।

नये कपड़े भी अनर्थक

कई लोग कपड़ों पर कपड़े खरीदते रहते हैं। महिलाओं की बात तो बहुत दूर किसी-किसी पुरुष तक के कपड़ों की सीमा नहीं होती है। वे हर महीने शर्ट बनवाते / खरीदते हैं। एक-दो बार पहन कर उसकी तरफ देखना भी पसन्द नहीं करते हैं लेकिन किसी को देते भी तो नहीं हैं। उनके पास ढाई-तीन सौ शर्ट रखे रहते हैं। महिलाओं के पास तो पाँच-सात सौ साड़ियाँ रखी रहती हैं। उसके साथ मैचिंग की चूड़ियाँ, चप्पल, रुमाल आदि भी उतने ही होते हैं। कई साड़ियाँ तो उनके पास ऐसी होती हैं जिनको आज तक पहना ही नहीं है, कई साड़ियाँ बिना पहने ही वार्डरोब में टंगी-टंगी जीर्ण हो जाती हैं, तो कई साड़ियाँ ओल्ड-फैशन हो जाने से उनको पहनने का मन नहीं होता है। कई साड़ियों को पहनने के अवसर की इंतजार में वर्षों निकल जाते हैं। कभी-कभी पच्चीसों साड़ियों में से कोई एक छाँटकर पहनकर फंक्शन अटेंड करने जाते हैं और वहाँ यदि किसी ने कह दिया कि अरे ! कैसी साड़ी पहनकर आई हो तो सब पर पानी फिर जाता है, इससे तो अच्छा होता कि हमारे पास पाँच-दस साड़ियाँ होतीं तो शायद कोई टोकता भी नहीं और टोक भी देता तो हमें बुरा भी नहीं लगता। आप स्वयं सोचें क्या घर में इतने सारे कपड़े अनर्थक नहीं हैं। जहाँ हमारे देश में कई लोगों को फटे कपड़े तक पहनने को नहीं मिलते वहाँ हम इतने कपड़े इकट्ठे करके रखते हैं, क्या यह उचित है?

कई लोग ठंड से दाँत किटकिटाते गरीब लोगों को अपनी आँखों से देखते हुए भी अपने पास ७-८ स्वेटर कैसे रख लेते हैं, यह आश्चर्य की बात है !

कोई यदि कपड़े खरीदकर पहनने के लिए योग्य अवसर का इंतजार करते-करते मरण को प्राप्त हो जावे तो उसकी क्या गति हो, क्या वह भूत नहीं बनेगा?

यह सब सोचकर आप नये कपड़े खरीदने / रखने आदि में आवश्यकता अनावश्यकता का ध्यान रखकर अनर्थक पापों से बचें।

इधर-उधर की चीजें

कई लोग टूटी साइकिल, उसकी ढ़िबरी, चैन, पहिया, ट्यूब, स्विच, डोरी, आड़ी-टेढ़ी कीलें, बच्चों के खेल-खिलौने आदि, खाली डिब्बे-डिब्बियाँ, खराब बंद घड़ी, टूटी कुर्सी आदि वस्तुओं को यह सोचकर रख लेते हैं कि कभी साइकिल / मोटर साइकिल खराब हो जायेगी तब काम आयेगी, कभी दीवाल में लगाने के लिए कील नहीं मिल पाई तो इसी टेढ़ी कील को सीधा करके लगा देंगे, आदि सोचकर सम्हाल कर रखते हैं। परन्तु जब आवश्यकता पड़ती है तब सोचते हैं कि अरे! इतने अटाले में बहुत नीचे दबी है, कौन निकालेगा, अभी तो नई खरीद लेते हैं वो बाद में और कभी काम आ जायेगी। आखिर आपकी सालों से सम्हाल कर रखी हुई वस्तु समय पर काम नहीं आ पाई या आलस के कारण आप समय पर उसका उपयोग नहीं कर पाये इससे तो अच्छा था कि इनको इकट्ठा ही नहीं करते, प्रतिवर्ष उनको सम्हालने की मेहनत ही नहीं करते तो कितना लाभ हो जाता।

एक महिला ने बताया- ''माताजी ! मेरी मम्मी ने मेरे बड़े भाई साहब की पहली कक्षा की पुस्तकें भी एक चद्दर (लोहे) की पेटी में सम्हाल कर रख रखी हैं जबकि भाई साहब की सर्विस लगे भी वर्षों हो चुके हैं। प्रतिवर्ष मम्मी उन पुस्तकों को निकालती है, दीमक वगैरह लगी हो तो साफ करती है और पुन: जमाकर रख लेती है। मैंने अबकी बार बड़ी मुश्किल से उनको अलग करवाया....।''

कई महिलाएँ तो खोटे सिक्के, फटे नोट, न्यूज पेपर की रद्दी, जीर्ण हुए नाड़े तक सम्हालकर रख लेती हैं जबकि उनका मूल्य अभी जितना उनको मिल सकता है उससे ज्यादा आगे कभी मिलने की सम्भावना ही नहीं है। फिर भी कहते हैं- ''आशा पर आसमान टिका है'' उनकी आशा लगी है कि सम्भव है कभी उनकी भी आवश्यकता पड़ जाये, उनके भी भाव आ जायें। जैसे कुछ वर्षों पहले बड़े शहरों में (चक्का जाम होने से) १०० रुपये किलो प्याज बिकी थी, सड़ी-गली प्याज भी अच्छे दामों में बिकी थी। चिकनगुनिया बीमारी का प्रकोप फैलने

से छोटे-से-छोटे तथा नकली डॉक्टर तक की दवाइयाँ बिक गयी थीं, उनका भी घर भर गया था इसलिए हो सकता है कभी ऐसा मौका आवे कि हमारे इन खोटे सिक्के, फटे-पुराने कपड़े, डिब्बे-डबलियों की भी वेल्यू हो जावे...।

नोट : घर में जब कभी साइकिल आदि ठीक करने का काम पड़ता रहता हो तो एक डिब्बे में कील, ढिबरी आदि रखना ही चाहिए।

नई वस्तुएँ भी अनावश्यक

यह कोई जरूरी नहीं है कि फटी-पुरानी, टूटी-फूटी वस्तुएँ ही अनावश्यक हों बल्कि अनावश्यक वस्तुएँ तो नई भी होती हैं, आज ही बाजार से खरीदी हुई वस्तु भी अनावश्यक हो सकती है और उन नई वस्तुओं को भी सम्हालने, उठाने-रखने, झाड़ने-पौंछने आदि में उतना ही समय एवं श्रम लगाना पड़ता है, उतना ही स्थान देना पड़ता है तथा उतना ही पाप का आस्रव होता है जितना पुरानी अनावश्यक वस्तुओं के रखरखाव में। नई वस्तुओं में इन सबके साथ उन्हें खरीदने में लगने वाला आर्थिक व्यय बढ़ ही जाता है। कई लोगों को खिलौने खरीदने का शौक होता है। इनके घर में न कोई बच्चे हैं और न अड़ोस-पड़ोस, रिश्तेदारों के बच्चों का आना-जाना ही बना रहता है फिर भी वे जब तब खिलौने खरीद लाते हैं। किसी-किसी को खाने-पीने की वस्तुओं का बहुत शौक रहता है, वे जानते हैं कि मैं और मेरी पत्नी दोनों ही स्वास्थ्य की दृष्टि से यह चीज नहीं खा पायेंगे। अभी बेटे-बहू, बच्चे, नाती, पौत्र आदि आने वाले भी नहीं हैं फिर भी वे बाजार से वो चीज खरीद कर ले आते हैं। लोभ कषाय के कारण वे किसी अपरिचित व्यक्ति को वह चीज दे भी नहीं पाते हैं और स्वयं को खाना नहीं है, आखिर आप सोचें उस चीज का क्या होगा ? उसे सड़ा-गलाकर मजबूर होकर फेंकना ही पड़ेगा। ऐसे कई उदाहरण आपको अपने घर में तथा अड़ोस-पड़ोस में मिल जायेंगे।

पूर्वोक्त टूटी-फूटी अनावश्यक वस्तुओं के निमित्त से शायद आपको आर्त्त-ध्यान नहीं भी हो लेकिन इन मूल्यवान अच्छी-अच्छी मनपसन्द वस्तुओं के कारण हमें / आपको आर्त्तध्यान भी हो सकता है अत: कोई भी वस्तु खरीदने के पहले उसकी उपयोगिता का विचार आप अवश्य कर लें।

कई घरों में जहाँ दो किलो चीज की आवश्यकता होती है वहाँ पाँच किलो चीज ले आते हैं, दो किलो खाते हैं और तीन किलो ऐसे ही सड़कर नष्ट हो

जाती है। एक लड़की ने बताया, ''माताजी ! मैं अपनी दीदी के यहाँ गई थी। उसके घर पर आठ लौकी देखकर मैंने पूछा- दीदी, इतनी लौकी क्यों रखी हैं? दीदी ने कहा- पापा रोज लौकी ले आते हैं और भोजन में लौकी बहुत कम बनती है लेकिन पापा मानते ही नहीं हैं, रोज एक लौकी ले आते हैं। एक लड़की ने बताया, ''माताजी! हमारे अंकल-आँटी दो ही सदस्य हैं फिर भी अंकल दो दर्जन केले खरीद लायेंगे, कभी दो-तीन किलो आम उठा लायेंगे। उनको कितना भी कहो- उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि उनको फल खरीदने का भी और खाने का भी बहुत शौक है।''

जब सही समझ में आया

एक सेठजी थे। उनको हर वस्तु लाना, संगृह करना, व्यवस्थित ढ़ंग से सजा कर रखना आदि बहुत पसन्द था। धन-सम्पत्ति के साथ-साथ उन्होंने दुनिया भर की चीजें इकट्ठी कर ली थीं। विडम्बना यह थी कि वे चीजों को इकट्ठा तो करते थे पर उनका इस्तेमाल नहीं करते थे। क्योंकि एक तो उन्हें वस्तुओं को भोगने से वे खराब हो जायेंगी, टूट जायेंगी, यह डर लगता था तथा दूसरे उनको उन पदार्थों के भोग करने का समय ही नहीं मिलता था। नतीजा यह हुआ कि उनके यहाँ तरह-तरह की चीजों का अम्बार लग गया। एक दिन अकस्मात् उन सबको देखकर उनके मन में विचार आया कि मेरे मरने के बाद इन सब चीजों का क्या होगा? संतान उनके कोई थी नहीं। उनके नाते-रिश्तेदार सारी चीजों को उठाकर फेंक देंगे। अपने घर ले जायेंगे। जिन चीजों को उसने इतनी ममता से इकट्ठा किया था, उनकी दुर्गति की कल्पना से सेठजी का मन विचलित हो उठा। उनका सारा आनन्द मिट्टी में मिल गया। घर उसके लिए भार हो गया। इसी बीच एक साधु उनके यहाँ आये। सेठ जी ने अपनी व्यथा उन्हें सुनाई। साधु बोले- ''सेठजी, यही समस्या मेरी थी। मैं अपनी धन-सम्पत्ति से बहुत हैरान था। भगवान ने रास्ता सुझाया। मैंने सारा सामान जरूरतमंदों को दे दिया। सामान का उपयोग हो गया। मेरा बोझ उतर गया।'' सेठ जी को रास्ता मिल गया। उन्होंने भी वही किया, जो साधु ने किया था। उनके जीवन के शेष वर्ष बड़े सुख-चैन से बीते।

कहने का आशय यह है कि नयी वस्तुएँ खरीदते समय भी अवश्य ख्याल रखना चाहिए कि क्या ये वस्तुएँ हमारे घर में, मेरे जीवन में आवश्यक हैं ? आने वाले कुछ ही दिनों में काम आने वाली हैं या कई वर्षों के बाद काम आने की

सम्भावना है, आदि-आदि विचार करके वस्तुएँ खरीदें, ताकि वस्तुओं का उपयोग भी हो और पैसा भी व्यर्थ में खर्च नहीं हो।

व्यापारिक क्षेत्र में

घर में ही अनावश्यक वस्तुएँ हों, ऐसा कुछ नहीं है, दुकानों में भी ऐसा बहुत कुछ सामान होता है जो आवश्यक नहीं होता है फिर भी उसे मालिक वर्षों-वर्षों तक सम्हाले रखते हैं। कपड़े के कई व्यापारी जब उनकी दुकान के कपड़ों को चूहे काट लेते हैं, वर्षा का पानी आदि लगने से कपड़ों के थानों में या साड़ी ब्लाउज-पीस आदि में दाग लग जाते हैं, छिपकली, चूहे, बिल्ली आदि के मलमूत्र कर देने से खराब हो जाते हैं अथवा मिसप्रिंट वाले निकल आते हैं तो ऐसे डिफेक्टिव कपड़ों को छाँटकर अलग रखते हुए वे सोचते हैं कि इनमें से खराब-खराब कपड़े को निकालकर शेष के छोटे-छोटे पीस करके या रेडिमेड शर्ट आदि बनवाकर बेच देंगे। अलग रखे हुए कपड़ों को जब भी देखते हैं तो यही सोचकर बात टाल देते हैं कि अभी रहने दो, बाद में कर लेंगे। ऐसा करते-करते पूरा वर्ष निकल जाता है। फिर दीपावली पर सफाई के समय उनको निकालकर साफ करते हैं, झड़काते हैं और पुन: वही बात सोचकर अलग रख देते हैं। इस प्रकार करते-करते पाँच-दस वर्ष तक बीत जाते हैं। आखिर जब कपड़ा पूरा खराब हो जाता है तो उसे फेंकना ही पड़ता है। कई व्यापारी जब साड़ी की डिजायन, रंग आदि की फैशन चली जाती है तो महँगी (५०००-७००० की) साड़ियों को निकालकर अलग रख देते हैं। कई बार ग्राहक उनको ३००० रुपये में खरीदने का प्रस्ताव रखते हैं लेकिन व्यापारी का लोभी मन यह कहकर कि अरे! पाँच हजार की साड़ी को तीन हजार में कैसे बेच दूँ, नहीं बेचने देता है। आखिर वे साड़ियाँ/कपड़े रखे-रखे ही और ज्यादा खराब हो जाते हैं, बिकने के योग्य भी नहीं रहते हैं तब उनको फिंकवाने का पैसा भी खर्च करना पड़ता है जो थोड़ा कुछ उस समय मिल रहा था वो भी नहीं मिल पाता है। एक बात और, पड़े-पड़े उन कपड़ों में छोटे-छोटे जीव भी उत्पन्न हो जाते हैं और कपड़ों को खराब करने वाले अन्य जीवों की संख्या भी बढ़ जाती है जिनसे आगे भी दुकान के नये कपड़ों के खराब होने की सम्भावना बनी रहती है।

समझदारों के यहाँ

कुछ त्यागी-वृती भाई-बहनों ने बताया कि माताजी ! आप गृहस्थों की

क्या कहती हैं, हम लोग भी अपनी पुस्तकें कार्टून, बस्ते आदि में जमाकर किसी परिचित के यहाँ रख देते हैं। जब वर्षायोग का समय आता है, उनके यहाँ से बस्ते मँगवाते हैं। उनमें से पुस्तकें, डायरी आदि निकालकर साफ करते हैं, धूप दिखाते हैं। उन सबको देखकर मन होता है कि सभी पुस्तकें पढ़ लें लेकिन पूरे चातुर्मास में एक भी पुस्तक नहीं पढ़ पाते हैं। चातुर्मास समाप्त होने वाला होता है तब उन पुस्तकों को फिर से जमाकर कार्टून, बस्ते में पैककर पुन: किसी परिचित के यहाँ छोड़ देते हैं। इस प्रकार करते-करते वर्ष-दर-वर्ष निकल जाते हैं। शायद ही हमने उन बस्तों में से ३-४ पुस्तकें/डायरी आदि पढ़ी होंगी, उनका उपयोग किया होगा। कितनी बार आत्मा ने पुकार भी की कि इन सबको किसी ग्रन्थालय या मन्दिर जी में विराजमान कर दिया जाय तो कई लोग इनका उपयोग करेंगे। इनको पढ़कर अपना जीवन बनायेंगे। लेकिन मन झट से कह देता है- अरे! नहीं, नहीं। कभी विशेष कार्यक्रमों में प्रवचन आदि करने की आवश्यकता पड़ गई, कोई विशेष ही प्रवचन करने पड़े तो इसमें से देख लेंगे। ये पुस्तकें उस समय अर्थात् दश लक्षण के प्रवचनों में काम आयेंगी। यह डायरी प्रश्नमंच करते समय अच्छी रहेगी, यह पुस्तक पंचकल्याणक में, तो इस पुस्तक का उपयोग सोलह कारण भावनाओं को बताते समय हो जायेगा...। इस प्रकार सोच-सोचकर पुन: पुन: उनको सम्हालते आ रहे हैं....। जबकि हमें पता भी है कि यह एक प्रकार से परिग्रह है, इनके रख-रखाव में हिंसा हो ही जाती है, कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि कहीं हम मोक्ष-मार्ग में आकर भी पुन: भटक न जावें, कहीं इन पुस्तकों / डायरी आदि में अति आसक्त होकर हमारा अकल्याण न हो जावे....।

उपर्युक्त सब बातों को देखते हुए मुझे तो ऐसा लगता है कि जैसे कोई व्यक्ति आम खाता है, आम खाने के बाद उसकी गुठली को चूसता है। गुठली चूसने के बाद मन होता है कि अब इसको फेंक दो, इसमें कुछ नहीं बचा है लेकिन उसको पलट कर दूसरी तरफ से देखता है तो उसमें कुछ पीलापन नजर आता है तो मन कहता है अरे, अभी तो यह इधर से पीली है, इसमें थोड़ा रस और है उसे थोड़ी देर और चूसना चाहिए। यह सोचकर वह उसे फिर चूसता है। इस तरह वह उस गुठली को बहुत देर तक चूसता रहता है। मजबूर होकर अर्थात् समय नहीं होने से उसे फेंकना पड़ता है, फिर समय होता तो शायद वह न जाने कितनी देर तक उसे चूसता रहता। इसी प्रकार यह मूर्ख जीव भी टूटी-फूटी चीजों को निकालकर झाड़-पौंछकर उन्हें देखता है तो लगता है यह चीज तो कितनी अच्छी है और फिर उसे रख लेता है।

अनावश्यक रखने से हानियाँ

अनावश्यक पदार्थों को रखने से अनेक प्रकार की हानियाँ होती हैं, उनमें से कुछ की चर्चा यहाँ की जाती है-

(१) वास्तु की दृष्टि से हानि (२) धार्मिक हानि (३) समय एवं श्रम की बरबादी।

वास्तु की दृष्टि से हानि

वास्तु की दृष्टि से यदि देखा जाय तो घर में टूटी कुर्सियाँ-मेज, सोफा, साइकिल, बन्द घड़ी आदि, खाली डिब्बे, बॉटल, शीशी आदि फूटा काच, बर्नी, हँडिया आदि कबाड़ा, टूटी (खण्डित) मूर्त्तियाँ आदि रखने से घर में कलह बना रहता है, धीरे-धीरे घर में निर्धनता आती है। मैंने एक दिन यह प्रकरण पढ़कर सोचा कि इन टूटी-फूटी वस्तुओं को रखने से घर में कलह क्यों होता है, क्यों इनको रखने से निर्धनता आती है? कुछ देर सोचने के बाद समझ में आया कि वास्तव में घर में टूटी वस्तुएँ रखने से घर टूटेगा, बन्द घड़ी आदि रखने से घर में आय के स्रोत बन्द हो जायेंगे। खाली डिब्बे आदि रखने से घर पुत्र, पौत्र, धन-सम्पत्ति आदि से खाली हो जायेगा, क्योंकि जैसी वस्तुएँ सामने दिखती हैं वैसे ही हमारे विचार उत्पन्न होते हैं। टूटी-फूटी वस्तुएँ देखने से टूटे-फूटे, खाली डिब्बे देखने से बिना प्रयोजन के विचार, बन्द घड़ी आदि देखने से मायाचारी, छल-कपट के विचार उत्पन्न होते हैं। ऐसे विचारों से पाप का आस्रव होता है, इन पापात्मक विचारों से पाप का ही उदय होता है। पापोदय में घर में कलह हो, घर की सम्पत्ति नष्ट हो तो कोई आश्चर्य नहीं है।

धार्मिक हानि

उपर्युक्त अनावश्यक चीजें एक ही जगह पर पड़ी रहती हैं। इन चीजों के एक ही स्थान पर पड़े रहने से उनमें जीव उत्पन्न होने लगते हैं। इन सामानों में चूहे, बिल्ली आदि बच्चों को जन्म दे देते हैं। कभी-कभी तो उस अटाले में सर्पिणी तक बच्चों को जन्म दे देती है, छिपकली के अण्डे हो जाते हैं। चिड़िया, कबूतर

आदि पक्षी अण्डे दे देते हैं। जब उन सामानों की सफाई करते हैं तो उन सबको अलग करना ही पड़ता है। पिंजरे आदि में बन्द करके उनके घर को छुड़वाना ही पड़ता है। थोड़ी सी असावधानी हो जाने पर अण्डे फूट जाते हैं, उनके घोसलों को स्पर्श कर लेने पर चिड़िया आदि अण्डे को सेती नहीं है अर्थात् उनका पालन नहीं करती है। इस सबका पाप किसको लगेगा ? उनका घर छुड़वाने से आगे आपको भी घर छुड़वाया जायेगा। मान लिया एक फट्टी या लकड़ी का कोई टूटा फर्नीचर एक जगह रखा रहा। उसको उठाकर यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो सैकड़ों हजारों की संख्या में छोटे-छोटे सफेद रंग के (जिनको कुन्थु कहते हैं) जीव निकलेंगे, उनकी रक्षा कैसे की जा सकती है। उनके एक जगह रखे रहने से मकड़ियाँ जाले बना लेंगी। जब आप उनको साफ करेंगे तो आपको जाले तोड़ने ही पड़ेंगे या सफाई करते समय जाले टूट ही जायेंगे। फलस्वरूप आपके भी घर तोड़े जायेंगे और जो सबसे बड़ा पाप ‘परिगृह’ माना गया है वह पाप तो मूल रूप से हुआ ही। उसके साथ-साथ अनावश्यक रखने से अनर्थदण्ड़ का पाप भी विशेष रूप से हुआ, करना पड़ा।

कुछ दिन पहले एक लड़का प्रायश्चित्त लेने के लिए आया। उसने कहा ‘‘माताजी ! एक टूटा पिंजरा हमारी दुकान में रखा था। मैंने उसको उठाकर फालतू के सामानों के साथ जमा दिया। उसमें पता नहीं कब दो चूहे घुस गये। जब उन्हें भोजन-पानी आदि नहीं मिला तो वे उसी में मर गये। दो-तीन दिन में उनमें से बास आने लगी। बास आने पर हमने दुकान में मरे हुए चूहे ढूँढ़े लेकिन कहीं चूहे नहीं मिले। फिर बहुत दिनों के बाद एक दिन उस पिंजड़े पर दृष्टि पड़ी तो उसमें सूखे हुए दो चूहे मिले। उसका मुझे प्रायश्चित्त दे दीजिए। मेरे प्रमाद के कारण ही बेचारे दो चूहों की जान चली गयी....।’’ यह सुनकर मैंने सोचा, देखो! दुकान में अनावश्यक टूटी-फूटी वस्तुएँ रखने से इतने बड़े पाप हो जाते हैं। चूहे तो बड़े थे सो दिख गये। उस अटाले में छोटे-छोटे जीव तो कितने मरते रहते होंगे उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। यदि टूटे पिंजड़े को फेंक दिया होता तो न उसे सम्हालने की मेहनत करनी पड़ती और न ही इतने भारी पाप का भार ही अपने सिर पर लेना पड़ता। अस्तु, आप अपने घर/दुकान में अनावश्यक अटाला इकट्ठा नहीं करें ताकि आपके सामने कभी ऐसी स्थितियाँ पैदा नहीं हों।

एक बार हम लोग एक धर्मशाला में रुके हुए थे। उस धर्मशाला की छत पर सिन्टेक्स की एक टूटी टंकी रखी थी। उस टंकी के ऊपर का लगभग आधा भाग टूट चुका था इसलिए उसके छोटे-छोटे टुकड़े निकल-निकल कर कभी हवा में उड़ जाते तो कभी बच्चे उन टुकड़ों से खेलते रहते, उठाकर खेलने के लिए ले जाते। वर्षा का मौसम होने से बारिस के पानी से उस टूटी टंकी में दो-तीन अंगुल गहरा पानी भर गया। वह पानी बहुत दिनों तक नहीं सूखा। पहले का पानी थोड़ा सूखता तब तक फिर बारिश आ जाती। इस प्रकार उस टंकी का दो-तीन अंगुल गहरा पानी दो-तीन महीनों तक नहीं सूखा। उसमें छोटी-छोटी मछलियाँ, कीड़े-लटें आदि अनेक जीव उत्पन्न हो गये। वे और वैसे जीव दिन-प्रतिदिन नये-नये उत्पन्न होते रहे। अन्त में, जैसे-जैसे पानी सूखता गया उस पानी के जीव भी मरण को प्राप्त होते गये। आपके घर में भी, आपके घर की छत पर भी ऐसी टंकी, बाल्टी, भगोना, कटोरी, वार्निस आदि के डिब्बे, डिब्बी रखे होंगे। उनमें कहीं पानी तो नहीं भरा है, थोड़ा झाँककर देख लें, उसमें कितने जीव उत्पन्न हो चुके हैं आपको स्वयं समझ में आ जायेगा। यदि उसमें थोड़ी मिट्टी धूल आदि डली होगी तो काई, अंकुरे, दूब आदि अवश्य मिल जायेंगे। यदि बारिस का मौसम नहीं है तो मरे हुए जीवों के कलेवर मिल जायेंगे क्योंकि वे डिब्बे आदि सीधे और खुले रखे हैं उनमें जीव गिर जाने पर वापस बाहर निकलना कठिन हो जाता है वे उसी में थोड़ा ऊपर चढ़ते हैं, फिर गिरते हैं, फिर चढ़ते हैं, गिरते हैं ऐसा करते-करते ही मरण को प्राप्त हो जाते हैं। क्या इन निरर्थक वस्तुओं को अलग करके हम पापों से नहीं बच सकते हैं ?

समय, श्रम एवं स्थान की बरबादी

इन सब अनावश्यक वस्तुओं को उठाने, रखने, झाड़ने, पौंछने, जमाने आदि में जो समय लगा उस समय में यदि आप महामंत्र की २-४ माला फेरते २-४ पृष्ठ कुछ सत्साहित्य, पुराण ग्रन्थ आदि का स्वाध्याय करते अथवा अपने बच्चों को ही कुछ नयी बातें सिखाकर संस्कारित करते, स्कूल की पढ़ाई ही करवाते तो कितना लाभ होता या कुछ भी नहीं करते तो भी उन पदार्थों को उठाने-रखने आदि के समय में जो परिगृहानन्दी रौद्रध्यान हुआ, जो जीवों की हिंसा हुई उसका पाप तो आप पर नहीं लदता। इनको रखने-उठाने आदि में आपने जो श्रम किया, जो मेहनत की, जो आपने अपनी शारीरिक एनर्जी का उपयोग किया, उसी शक्ति को यदि आप एक-बार अपनी सास के पैर दबाने या उसके द्वारा कहे गये काम

को करने में, किसी की सहायता करने में लगाते, यदि आप उन सामानों की व्यवस्था में शक्ति नहीं लगाते तो शाम के समय आपको यह नहीं कहना पड़ता कि अब बहुत थक गये हैं। आज मंदिर नहीं जा रहे हैं या शास्त्रादि नहीं पढ़ रहे हैं, अपन तो सो जाते हैं। इस कबाड़े को रखने के लिए जो जगह आपने दे रखी है उस जगह को यदि आप आने वाले मेहमानों को बैठाने के लिए रखते अथवा बच्चों को खेलने के लिए रख लेते तो शायद बच्चे आपके भण्डार और बैठक में ऊधम मचाकर नुकसान तो नहीं करते। सार यह है कि **आप इन अनावश्यक वस्तुओं को घर में रखकर अपना समय, शक्ति और स्थान बरबाद नहीं करें।**

जो न अनावश्यक है और न अतिआवश्यक

कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो घर में न आवश्यक होती हैं, न अति आवश्यक होती हैं और न ही अनावश्यक होती हैं अर्थात् वे वस्तुएँ जो हमेशा काम में नहीं आती हैं लेकिन ऐसी भी नहीं हैं कि जो कभी भी काम में नहीं आती हैं अर्थात् वे वस्तुएँ वर्ष में दो-चार बार काम में आती हैं और वे इतनी आवश्यक भी नहीं होती हैं कि उन्हें यदि घर में नहीं रखा जाय तो काम नहीं चल सकता हो। जैसे २०-२५ जोड़ा गादी-तकिया, ५०-६० थाली-कटोरियाँ आदि को यह सोचकर रखते हैं कि अचानक कई मेहमान एक साथ आ गये या शादी-विवाह, बर्थ डे आदि बड़े कार्यक्रमों में जब सब इकट्ठे होंगे तो इतनी थालियों की आवश्यकता पड़ेगी, गादी-तकियों-रजाइयों की आवश्यकता पड़ेगी पर एक बात यह भी है कि इतनी सारी थाली-कटोरी आदि नहीं रखकर समय पर किराये से लाकर भी काम चलाया जा सकता है।

महापुरुषों के विचार

महात्मा गांधी

अपनी आवश्यकता भर की चीजें अपने पास रखें, ज्यादा संगृह नहीं करें, यह भी अहिंसा से जुड़ा अपरिगृह का विचार है। गांधीजी के आश्रम में दातुन का उपयोग होता था पर यदि आधी दातुन से दाँत साफ करने का काम हो जाता था तो गांधीजी शेष आधी दातुन दूसरे दिन के लिए रख लेते थे। उसे व्यर्थ फेंकने नहीं देते थे। एक बार बापू ने किसी काम से दो पत्तियाँ (पेड़ से तोड़कर) लाने को कहा, किसी आश्रमवासी ने पूरी डाली तोड़कर बापू को देना चाहा। बापू बड़े

दुःखी हुए। उन्होंने स्वयं उसका प्रायश्चित्त किया और उस व्यक्ति को भी कहा कि उतना ही गृहण करो, जितना काम आए। इसमें अहिंसा और अपरिगृह दोनों ही बातें आ गईं।

एक बार गाँधी जी देवीपुर गाँव में पहुँचे। वहाँ के लोगों ने गाँधी जी के स्वागत के लिए फूलों के बड़े-बड़े हार बनवा रखे थे। यह देखकर गाँधी जी बोले, ''इन हारों के बजाय आप मुझे सूत के हार पहनाते तो मुझे बड़ी खुशी होती, क्योंकि सूत के हार बाद में कपड़ा बुनने के काम में आ जाते। वे फिजूल नहीं जाते। फूल अपने पौधे/वृक्ष पर ही शोभा देते हैं और सबको अपनी सुगंध और सुन्दरता से आनन्द पहुँचाते हैं, उनको व्यर्थ में सजावट के लिए या शौक-मौज के लिए तोड़ना अनुचित ही नहीं है, वरन् सूक्ष्म हिंसा है।

विनोबा भावे

विनोबा का कहना है कि शरीर तो एक मिला है, उस पर एक जोड़ी कपड़े पहने जा सकते हैं। आप भले ही संदूक में पचास जोड़ी रख लो, पहनोगे तो एक ही, क्या पचास जोड़ी एक बार में पूरे के पूरे पहनोगे? ना, एक ही पहन पायेंगे, लेकिन उस एक को पहनने के लिए उनचास पेटी में रखे-रखे क्या सुख दे रहे हैं? जिस दिन उसमें से एक कम हो गया दुःख हो जाएगा, कपड़े जो शरीर पर पहने हैं वे कुछ दुःख नहीं दे रहे हैं। पेटी में रखे बिना प्रयोजन दुःख देने वाले कपड़ों से क्या मतलब?

कवि कुम्भनदास

कुंभनदास हिन्दी के प्रख्यात कवि थे। एक दिन राजा मानसिंह उनके दर्शनार्थ भेष बदलकर उनके घर पहुँच गये। उन्होंने देखा, कुम्भनदास जी अपनी बेटी को पुकार कर कह रहे थे ''पुत्री! आरसी लाना, मुझे तिलक लगाना है।'' बेटी ने कहा- ''पिताजी! आरसी तो बिल्ली ने तोड़ दी है। कुंभनदास जी उसे समझाते हुए बोले, ''कोई बात नहीं बेटी! किसी पात्र में जल भरकर ले आओ।'' राजा ने देखा कि कवि की पुत्री टूटे घड़े में पानी लाई। जल की छाया में चेहरा देखकर कवि ने मस्तक पर तिलक लगा लिया। यह दृश्य देखकर राजा दंग रह गया। राजा

मानसिंह ने दूसरे दिन एक स्वर्ण जटित आरसी (दर्पण) कवि के चरणों में रखी और सेवा स्वीकार करने की प्रार्थना की।

कवि ने विनमृता से कहा- ''महाराज! यह सेवा तो है लेकिन आज के बाद कृपया आप यहाँ मत आइएगा, अन्यथा आप बेकार वस्तुओं से मेरा घर भर देंगे।'' कवि की बात सुन कर राजा आश्चर्यचकित रह गया। वह सोच भी नहीं सकता था कि कुंभनदास की निर्धनता कोई मजबूरी नहीं है। अपरिगृह का रास्ता उन्होंने खुद अपने मन से चुना है।

लाला लाजपतराय

लाला लाजपतराय का कहना था कि यदि हमारे घर में बिना पंखे, कूलर के काम चल जाता है तो गृहमंत्री होने के कारण घर में कूलर आदि रखना अनावश्यक ही तो है।

वे अपनी बेटी को भी जब तक पुरानी साड़ी फट नहीं जाती तब तक न नई खरीदने देते थे और न किसी से लेकर पहनने देते थे।

लालबहादुर शास्त्री

एक बार लालबहादुर शास्त्री जी कच्चे रास्ते से जा रहे थे। रास्ते के बीच में से उनकी गाड़ी जा रही थी। दोनों तरफ हरे-भरे चना, जौ..... आदि के खेत लहलहा रहे थे। उन खेतों को देखकर उनका मन कुछ चने खाने का हुआ। शास्त्री जी की गाड़ी रुकी और खेत का मालिक भी उनके पास पहुँचा और उनका मन समझते ही वह कुछ पौधे उखाड़ने लगा। उसको पौधे उखाड़ते देखकर शास्त्री जी जोर से चिल्लाये.. ''अरे! यह क्या कर रहे हो ? कोई भी पौधा मत उखाड़ो, न ही डालियाँ तोड़ो, केवल जो फलियाँ पुष्ट हैं उन्हें ही तोड़कर ले आओ...।'' शास्त्री जी की बात सुनते ही खेत का मालिक अपने ही खेत में चोर जैसा हो गया था। शास्त्री जी ने कहा कि पौधा उखाड़ोगे तो अधपकी कलियाँ और फलियाँ व्यर्थ जायेंगी और हमें उनकी आवश्यकता भी नहीं है। जितना आवश्यक है उतना ही उपयोग करो, व्यर्थ फेंकने से, खराब करने से क्या। ऐसी कोमल भावना थी हमारे नेता लालबहादुर शास्त्रीजी की।

उपसंहार

यों तो संसार की कोई भी वस्तु अनावश्यक नहीं है, एक छोटे अंकुर से लेकर बड़े से बड़ा वृक्ष, नमक से लेकर पकवान तक के खाद्य पदार्थ, झाड़ू से लेकर सोने-चाँदी के जेवर आदि सभी किसी अपेक्षा आवश्यक वस्तुएँ हैं। लेकिन इन्हीं वस्तुओं के साथ ऐसी ही अनावश्यक वस्तुएँ रखना अनर्थदण्ड है। जैसे- झाड़ू के साथ टूटी-घिसी झाड़ू भी रखे रहना, साइकिल को सुधारने की सामगि्रयों के साथ टूटी-फूटी ढ़िबरी, टूटा पेचकस आदि पुर्जे भी सम्हाले रखना, खाने की वस्तुओं के साथ सड़ी-गली, बासी-बदबू वाली सब्जी, सूखी रोटियाँ आदि जिनको आज नहीं तो कल अवश्य फेंकना ही पड़ेगा, उनकी सुरक्षा करते रहना। हमारे धर्मगृन्थों में तो कहा है कि जो पदार्थ हमारे जीवन में आवश्यक हैं उन पदार्थों को भी राग की रति को कम करने के लिए अर्थात् जिन पदार्थों को हम खाते-पीते हैं, ओढ़ते-पहनते हैं उन पंचेन्द्रिय की विषय सामगि्रयों में भी आसक्ति भाव को कम करने के लिए इन सामगि्रयों का परिमाण करना चाहिए। यह बात पढ़कर के लगता है कि अनावश्यक सामगि्रयों की तो कहीं गुंजाइश ही नहीं है। उपर्युक्त प्रकरण में जीवन सम्बन्धी कुछ सामगि्रयों की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ अनावश्यक सामगि्रयों से हमारे भावी जीवन का कैसा पतन होता है, इन सब बातों को समझकर हम कुछ धर्म करें जिनेन्द्र देव की सेवा करें एवं पाप से बचें तभी हमारा आवश्यक, अनावश्यक वस्तुओं को जानना सार्थक होगा।

भोजन में

भोजन करना संसारी प्राणी के लिए आवश्यक है। भोजन के बिना इस शरीर रूपी गाड़ी को नहीं चलाया जा सकता है। भोजन छोड़ देने से जीव मर जाता है अर्थात् जिस शरीर में वह रह रहा है वह छूट जाता है। उसके आयु कर्म की उदीरणा हो जाती है। इसलिए दस प्राणों की रक्षा करने के लिए भोजन करना आवश्यक है। भोजन में कुछ चीजें अति आवश्यक होती हैं जिनके बिना व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता है जैसे- दाल, चावल, रोटी, पानी, सब्जी आदि।

कुछ चीजें आवश्यक होती हैं क्योंकि यह शरीर पंचभूतों से उत्पन्न हुआ है। उसमें जिस तत्त्व की कमी हो जाती है उसी सम्बन्धी बीमारियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। इस शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिए भी अनेक प्रकार के प्रोटीन्स/ विटामिन्स,

आदि की आवश्यकता होती है। इन सबकी पूर्ति के लिए कुछ चीजें आवश्यक होती हैं जैसे- दूध, छाछ, घी, नमक, शक्कर, गुड़ आदि। चटनी, पापड़, खीचले, अचार आदि खटाई, लौंग, इलायची, सौंफ, अजवाइन, हल्दी, सौंठ, आदि अल्प मात्रा में खाई जाने वाली चीजें अनावश्यक नहीं हैं क्योंकि इनसे भोजन का पाचन होता है, फिर भी इन्हें अति आवश्यक नहीं कहा जा सकता है। खाद्य सामग्री दो प्रकार की है- (१) भक्ष्य (२) अभक्ष्य।

भक्ष्य वस्तुएँ

भक्ष्य चीजें भी हमेशा जीने के लिए आवश्यक नहीं होती हैं। जो भक्ष्य (खाने के योग्य) होती हैं वे ही स्वास्थ्य के लिए भी लाभदायक होती हैं लेकिन वे भी मात्रा का उल्लंघन कर देने पर अभक्ष्य के समान अग्राह्य हो जाती हैं। कोई बीमारी हो जाने पर वे ही चीजें अनावश्यक/अभक्ष्य होती हैं। जैसे- शक्कर/ शक्कर की मिठाई अभक्ष्य नहीं है लेकिन ज्यादा खा ली तो अभक्ष्य है। और सुगर की बीमारी होने पर या टाइफाइड आदि ऐसी बीमारियाँ, जिनमें पाचन तंत्र बहुत कमजोर हो जाता है, हो जाने पर वे (मिठाइयाँ) अभक्ष्य ही नहीं, जहर के समान मौत के मुँह में धकेलने वाली होती हैं, वे भक्ष्य कैसे हो सकती हैं? वे भक्ष्य होकर भी अभक्ष्य होती हैं, आवश्यक होकर भी अनावश्यक होती हैं, प्रयोजनभूत होकर भी अनर्थकारी होती हैं। एक स्थान पर किसी फंक्शन में पिस्ता की कतली (बर्फी) बनी थी। एक लड़के ने इतनी कतली खा ली कि वह उसको पच नहीं पाई, फलत: वह मरण को प्राप्त हो गया। पिस्ता की बर्फी कोई अनावश्यक चीज नहीं है लेकिन विवेक का अभाव हो जाने से वो ही मौत का कारण बन गई।

एक महिला के डिलीवरी हुई। उसकी सास को कहीं जाना था। दो-तीन दिन के बाद उसने अपनी बहू से कहा- यह घी रखा है। तुम थोड़ा-थोड़ा करके अपने भोजन में खा लेना। सास चली गई। बहू ने सोचा-रोज-रोज कौन घी खायेगा। उसने पूरा घी दो-तीन दिन में ही खा लिया। उस घी से उसके मुँह में इतने छाले हो गये जिनकी गिनती नहीं की जा सकती है। घी अभक्ष्य नहीं था, वह घी उसी को खाना था लेकिन मात्रा से अधिक खा लेने से पाप और दुख का कारण बन गया।

भक्ष्य वस्तुओं में कुछ चीजें स्वाद के लिए खाई जाती हैं तो कुछ चीजें स्वास्थ्य के लिए खाई जाती हैं। कुछ चीजें दिखने में ऐसी लगती हैं कि स्वाद के लिए खा रहे हैं लेकिन वे स्वास्थ्य के लिए भी लाभप्रद होती हैं। जैसे सौंफ, लौंग, नीबू आदि, इनसे भोजन अच्छी तरह पच जाता है। ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं लेकिन इन वस्तुओं की मात्रा का उल्लंघन कर दिया जाय तो वे ही स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जायेंगी। जैसे - नीबू, ज्यादा मात्रा में खाया जाये तो गठिया जैसी बीमारी हो सकती है, लौंग अधिक मात्रा में खाने से शरीर में गर्मी की बीमारियाँ हो सकती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जो वस्तु भक्ष्य भी है, स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है लेकिन जिह्वा को पूछकर खाई, बेहोशी में खाई तो उससे उतनी ही हानि होगी जितनी अनावश्यक वस्तु खाने से होती है।

ऐसा भी नहीं है कि ज्यादा खाना या गरिष्ठ भोजन करना ही अनर्थदण्ड या शरीर के लिए अनावश्यक है बल्कि बुखार आदि के समय अचार की एक कली, ककड़ी के दो पीस खाना भी अनावश्यक है। स्वस्थ रहते हुए भी इमली, अमचूर, नमक आदि जैसी सस्ती तथा इडली-डोसा जैसी हल्की चीजें भी अनावश्यक हो सकती हैं। इन चीजों का उल्लंघन करके भी व्यक्ति अपना स्वास्थ्य बिगाड़ सकता है, व्यवहारहीनता दिखा सकता है, अपनी दीन-हीनता प्रगट कर सकता है।

अभक्ष्य भी दो प्रकार के होते हैं-

(१) सामान्य अभक्ष्य (२) विशेष अभक्ष्य

(१) लौकिक अभक्ष्य (२) पारलौकिक अभक्ष्य।

सामान्य अभक्ष्य वे हैं जिन्हें लौकिक जन भी अभक्ष्य मानते हैं। जिनको खाने वाले लौकिक जनों के द्वारा हीन दृष्टि से देखे जाते हैं। जिनका सेवन करने वालों को लोग पापी कहते हैं। जिनको खाने से अनेक प्रकार की खतरनाक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिनका सेवन करने से घर की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, जिसका सेवन करने से घर में हमेशा कलह मचा रहता है अर्थात् शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक सभी हानियों की जड़ रूप मानी जाने वाली वस्तुएँ सामान्य अभक्ष्य हैं। जैसे- माँस, मदिरा, मधु (शहद) बीड़ी, सिगरेट, गुटखा, पाऊच, स्मेक, अण्डा, मछली, चरस, गाँजा, मधुर मुनक्का, संजीवनी सुरा आदि। इन पदार्थों के सेवन से जीवन में हानि ही होती है। **दूसरी बात** इन चीजों की जीवन में किसी भी अपेक्षा आवश्यकता नहीं है अर्थात् इनका सेवन किये बिना भी जीवन इतने अच्छे ढंग से

चल सकता है जितना कि इनका सेवन करने पर नहीं चलता है। **तीसरी बात** इन सबकी उत्पत्ति मात्र जीवहिंसा से ही होती है। इनको खाने/ सेवन करने से हिंसा के ही परिणाम उत्पन्न होते हैं। आप ही बतायें हमारे समान प्राणियों के घात से उत्पन्न हुई वस्तु भी क्या जीवन में आवश्यक हो सकती है? जो हमारे जीवन का भी नाश करने वाली हो वह चीज जीवन के लिए आवश्यक हो ही कैसे सकती है। **चौथी बात** ये सब ऐसी चीजें हैं जिनकी लत, आदत पड़ जाने पर इनसे पिण्ड छुड़ाना बड़ा कठिन हो जाता है। रोटी-दाल, सब्जी की किसी को लत नहीं पड़ती जबकि आदमी इन्हें हमेशा खाता है, दिन में चार बार खाता है। और इधर इन (शराब आदि) चीजों को किसी ने एक बार भी या मजबूरी से, किसी के दबाव से, शौक से, संकोच से, मनुहार से, किसी की देखा-देखी भी अथवा किसी बीमारी की दवाई के रूप में भी उपयोग कर लिया तो उसको छोड़ने में पसीना आने लगता है, क्योंकि ये चीजें शरीर की मांग पर नहीं खाई जाती हैं, ये तो मन या जिह्वा की माँग पर खाई जाती हैं। औषधि के रूप में खाकर भी, दवाई के रूप में नहीं खाकर स्वाद लेकर खाई जाती हैं इसीलिए इन्हें छोड़ते समय भी मन या जिह्वा की आज्ञा लेना आवश्यक होता है। यह मूर्ख मन इतनी जल्दी आज्ञा दे दे यह कैसे हो सकता है। अत: ये सब सामान्य अभक्ष्य हैं, इनका सेवन करना तो अनर्थकारी ही है, अनावश्यक ही है, इनके सेवन को तो अनर्थदण्ड ही कहना चाहिए। इन्हीं को लौकिक अभक्ष्य भी कह सकते हैं।

नोट : (१) औषधि आदि में मिलावट के रूप में इनका सेवन होता है। इससे लत नहीं पड़ती है अथवा दाढ़ आदि के दर्द में जरदा आदि का प्रयोग मात्र दवाई के रूप में किया जाय तो लत नहीं पड़ती है ऐसी स्थिति में वे सामान्य अभक्ष्य में नहीं आती हैं। (२) मांस, अण्डा, मछली, शराब आदि तो सर्वथा अभक्ष्य में ही आते हैं क्योंकि इनका उत्पादन जीवघात के बिना हो ही नहीं सकता है। इनका तो औषधि के रूप में प्रयोग करना भी महापाप का ही कारण है।

विशेष अभक्ष्य

जिनको सामान्य लोग तो अभक्ष्य नहीं मानते हैं, जिनको खाना जीवन के लिए अतिआवश्यक भी नहीं है लेकिन फिर भी जो शौक से कभी-कभी खाये जाते हैं, जो वर्ष में दो-चार महीने सीजन के दिनों में ही उपलब्ध होते हैं, जिनकी लत नहीं पड़ती, जिनकी उत्पत्ति में विशेष हिंसा नहीं होती अर्थात् जिनके उत्पाद

में किसी जीव के प्राणों को हरण करने की आवश्यकता नहीं होती है, जो प्रकृति के द्वारा सहज रूप से इस जीव जगत् को प्राप्त हो जाते हैं वे अभक्ष्य होते हुए भी अभक्ष्य नहीं माने जाते हैं। जैसे- अचार, मुरब्बा, पापड़, बड़ी, आटा, लड्डू, पेड़ा आदि वस्तुएँ जो भक्ष्य होकर भी मर्यादा के बाहर हो जाने पर अभक्ष्य कही जाती हैं अर्थात् जिनको शास्त्रों में अमर्यादित होने पर जीवोत्पत्ति से युक्त माना गया है। ये चीजें यद्यपि शरीर के लिए अति आवश्यक नहीं हैं लेकिन संसार में रहते हुए लोकव्यवहार निभाना, रिश्तेदारों के यहाँ आना-जाना, शादी-बर्थ डे आदि फंक्शन अटेंड करना, मौत-मरण के समय जाना, बीमारी आदि विशेष परिस्थितियों में एक-दूसरे की सहायता करना आवश्यक होता है। इन कार्यों में एक-दूसरे की सहायता करने के लिए बाहर जाना पड़ता है, बाहर जाने पर भोजन की व्यवस्थाएँ अपने अनुसार नहीं बन सकतीं। बाहर जाने पर होटल-ढाबा आदि में खाना पड़ता है, बहुत दिनों का रखा हुआ बासी भी खाना पड़ता है। जैसा मिल जावे, उससे अपनी क्षुधा को शांत करना पड़ता है, जब तक उपर्युक्त कार्य नहीं छोड़े जाते तब तक इन अभक्ष्यों को भी नहीं छोड़ा जा सकता है।

इन पदार्थों को भी यदि भोजन का अंग बना लिया जाय, इनको खाये बिना हमारा काम नहीं चले, इनको भी हम अपना प्रिय भोजन मान लें, इनको खाये बिना हमारा मन तृप्त नहीं हो, इनके नहीं मिलने पर कोई पागल अर्थात् इनको प्राप्त करने के लिए चोरी करने, झूठ बोलने, छल-मायाचारी आदि पाप करने के लिए मजबूर हो जाता है तो ये वस्तुएँ भी अनावश्यक / अनर्थक तथा अभक्ष्य में ही आयेंगी।

उम्र ढलने के साथ-साथ यदि इन वस्तुओं का उपयोग नहीं छोड़ा जाता है तो लोक में हँसी का पात्र बनना पड़ता है। जैसे- साठ साल की उम्र वाले भी आठ वर्ष की उम्र वाले बच्चों के समान बिस्किट, टॉफी खाते हैं, पेप्सी कोकाकोला आदि पीते हैं, तो हँसी के कारण हैं ही। जिसको सरकार भी धर्माचरण करने के लिए ही मानों रिटायर कर देती है, वह भी यदि धर्म करने से/ धर्मायतनों में जाने से जी चुराता है, आलू-प्याज, बैंगन जैसी अभक्ष्य चीजें खाता है, दाँतों और आँतों के मना कर देने पर भी केरी, नीबू, आँवला का अचार खाने में आसक्त बना रहता है; सुगर, ब्लडप्रेसर जैसी बीमारियाँ हो जाने पर भी बाजार की जलेबी, कलाकंद आदि मिठाइयाँ खाने का नियम ही बनाये रखता है तो क्या उसे आप बावला /

कम बुद्धि वाला नहीं कहेंगे। अत: अपनी उम्र, शरीर तथा बीमारी आदि का ध्यान रखते हुए अपने भोजन को संतुलित बनाना ही धर्म है; अनर्थक, अनावश्यक भोजन से बचने का उपाय है।

अनावश्यक भोजन से हानि

अनावश्यक अथवा अभक्ष्य भोजन करने से मात्र हानि ही हानि है, कहीं किसी भी अपेक्षा लाभ नहीं हो सकता है। फिर भी सभी हानियों को यहाँ नहीं लिखा जा सकता है, कुछ हानियों को यहाँ बताते हैं-

(१) शारीरिक हानि (२) आर्थिक हानि (३) धार्मिक हानि (४) व्यावहारिक हानि।

शारीरिक हानि

अनावश्यक भोजन करने से हमारा लीवर कमजोर हो जाता है। लीवर पर ज्यादा दबाव पड़ता है जिससे ५० साल तक काम करने योग्य लीवर २०-२५ वर्ष में ही थक जाता है, उसकी कार्यक्षमता कम हो जाती है अथवा वह सही-सही कार्य करने में समर्थ नहीं होता है। जब लीवर सही कार्य नहीं करता है तो अपच, गैस, कब्ज आदि बीमारियाँ शरीर को घेर लेती हैं। फलत: एक-एक ग्रास गिन-गिनकर खाने पर भी स्वस्थता अनुभव में नहीं आती है। कभी-कभी तो भोजन से ज्यादा दवाइयाँ खाने की नौबत आ जाती है। बिना सोचे-समझे खाने से गृहीत नियम तोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

एक घर में चार व्यक्ति भोजन करने के लिए गये। तीन व्यक्तियों को शक्कर का त्याग था। चौके (जहाँ वे भोजन करने गये थे) में मगद के लड्डू बने थे। तीनों व्यक्तियों (जिनको शक्कर का त्याग था) ने सोचा हमें अपने हिस्से के लड्डू इसको दे देने चाहिए। उन्होंने अपनी थाली के लड्डू चौथे व्यक्ति को परोस दिये। दूसरी बार भी जब लड्डू आये तो उन्होंने उसे परोस दिये। इस प्रकार शक्कर खाने वाले ने अपनी जिह्वा से पूछ-पूछकर १४ लड्डू खा लिये। उस समय तो कुछ नहीं हुआ। लेकिन रात में उसका पेट फूलने लगा। इतना पेट फूला कि श्वास लेना भी मुश्किल हो गया। आखिर आधी रात में डॉक्टर को बुलवाना पड़ा, दवाई खानी पड़ी। यह है बिना सोचे-समझे खाने का फल। जिह्वा इन्द्रिय के क्षणिक आनन्द के फलस्वरूप रात भर वेदना सहनी पड़ी, पेट को ठीक करने के लिए लंघन करके

भूख की वेदना सहनी पड़ी तथा उस वेदना से शरीर की इतनी एनर्जी खतम हो गई कि शायद २-४ दिन उपवास भी कर लेते तो इतनी एनर्जी खतम नहीं होती।

साधु-संतों को छोड़कर संसार में जिसको शारीरिक सुख नहीं है उसको मानसिक सुख तो हो ही नहीं सकता है, जिसको मानसिक सुख नहीं है उसके जीने और मरने में अन्तर ही क्या है ? अत: अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए हमेशा सुपाच्य, हल्का, भक्ष्य तथा शरीर को जितना आवश्यक है उतना ही भोजन करना चाहिए। **मूकमाटी** में **आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज** ने कहा है-

आधा भोजन कीजिए, दुगुना पानी पीव।
तिगुनी हँसी और चौगुणा श्रम वर्ष सवासौ जीव॥

मूलाचार आदि ग्रन्थों में भी कहा है कि साधु को आधा पेट भोजन से, एक चौथाई पेट पानी से तथा एक चौथाई पेट श्वास लेने के लिए खाली रखना चाहिए। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए हम अनावश्यक भोजन से होने वाली शारीरिक हानियों से बचें।

आर्थिक हानि

अनावश्यक भोजन करने से उत्पन्न हुई बीमारियों को ठीक करवाने के लिए आर्थिक व्यय अवश्य होता है। मांस, शराब, जर्दा, पाउच, सिगरेट, बीड़ी जैसे पदार्थों का सेवन करने से तो कैंसर, टी.बी. जैसी भयंकर बीमारियाँ हो जाती हैं। अथवा अच्छे पदार्थों को खाने में अति करने से भी बहुत सारी असहनीय बीमारियाँ हो जाती हैं जिनको ठीक कराने में मध्यम वर्ग वालों का घर तो पूरा खाली हो जाने के बाद भी रोगी बच नहीं पाता है। कई व्यसनी तो हजार पन्द्रह सौ की तनख्वाह मिलती है, उसमें से दो-सौ तीन-सौ रुपये का गुटखा खा जाते हैं। यदि वे उन पैसों में से १० रुपये का दूध, फल, मेवा आदि रोज अपने बच्चों को खिलाने लगें तो उनके बच्चे-पत्नी स्वर्गों के सुख भोग सकते हैं लेकिन वे इतना सोचते ही कहाँ हैं? इस अभक्ष्य और अनावश्यक भोजन के स्थान पर यदि हम हरी सब्जियाँ, दूध, फल खाने लगें तो शायद सस्ते ही पड़ेंगे। दूसरी बात, इन चीजों की लत पड़ने पर घर की जमीन-जायदाद, पत्नी के आभूषण आदि को बेचकर भी इनको खरीदना/खाना पड़ता है जिससे घर की अर्थ व्यवस्था चरमरा जाती है। घर में दुख

ही दुख छा जाता है। बीमार होने पर आजीविका उपार्जन करने के साधन रूप दुकान आदि पर भी नहीं जा पाते हैं, उसमें भी आर्थिक हानि तो होती ही है। इस प्रकार अनावश्यक भोजन से होने वाली आर्थिक हानि को समझकर अनावश्यक/अभक्ष्य भोजन का त्याग कर देना चाहिए।

धार्मिक हानि

अनावश्यक भोजन करने से जो बीमारियाँ होती हैं उनको ठीक करने के लिए निश्चित रूप से अभक्ष्य औषधियों का ही सेवन करना पड़ता है। हिंसज औषधियों का सेवन करने से पापास्रव होता है, पापास्रव से दुर्गति में गमन होता है।

अनावश्यक (अभक्ष्य) भोजन करने से परिणामों में क्रूरता उत्पन्न होती है, क्रूर परिणाम वाले के धर्म रूप अर्थात् अच्छे परिणाम उत्पन्न नहीं होते हैं और अच्छे परिणामों के बिना धर्म कैसे हो सकता है? अभक्ष्य भोजन की उत्पत्ति नियम से जीवहिंसा पूर्वक होती है, हिंसात्मक पदार्थों का सेवन करना तो धर्मनाश का ही कारण है; उन पदार्थों के सेवन से धर्म रूप परिणाम कैसे हो सकते हैं।

अभक्ष्य पदार्थों के सेवन से पूर्वोपार्जित पुण्य भी पाप में परिणत हो जाता है अर्थात् पूर्व का किया हुआ धर्म भी नष्ट हो जाता है तो आगे के लिए धर्म कैसे हो सकता है?

मद्य, मांस, मधु जैसे अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करने वालों को तो धार्मिक स्थलों पर जाने में ही शर्म आती है। क्योंकि ऐसे लोगों के आभामण्डल से धार्मिक स्थलों की पवित्रता नष्ट होती है। ऐसे लोगों को कोई धार्मिक कार्य नहीं करने दिया जाता है, अर्थात् उनको आहारदान, पूजा, अभिषेक, शास्त्र पढ़ना आदि कार्यों के समय पीछे ही रहना पड़ता है।

इन अनावश्यक पदार्थों का सेवन करने से बृह्मचर्य-स्वदारसंतोष वृत भी नष्ट होता है। क्योंकि गरिष्ठ, अभक्ष्य या अति मात्रा में भोजन करने से शरीर में उत्तेजना उत्पन्न होती है। उत्तेजना होने से वीर्य अधोगामी होता है। इससे शरीर भी कृश होता है और बृह्मचर्य भी नष्ट होता है।

अनावश्यक खाने से यदि पेट खराब हो गया, दो-चार बार शौच के लिए जाना पड़ा तो चार बाल्टी पानी ज्यादा बहाना पड़ा, उसमें कितना पाप हुआ। आदि-आदि समझकर अनावश्यक खाना छोड़कर धर्म की रक्षा करनी चाहिए।

व्यावहारिक हानि

अनावश्यक भोजन करने वाले की सभी लोग हँसी बनाते/उड़ाते हैं, क्योंकि उसकी खुराक सामान्य आदमियों की खुराक से अधिक हो ही जाती है। एक सेठ एक दिन पंगत में भोजन करने के लिए गया। पंगत में गुलाबजामुन बने थे। सेठ को मीठा बहुत भाता था। उसने आकण्ठ गुलाबजामुन खाये। जब उसका पेट भर गया तो भी उसने एक दो गुलाबजामुन और खा लिये। जिससे वह वहीं लुढ़क गया। उसे लुढ़कते देखकर सब लोग बहुत हँसे। तथा उसकी खिल्ली बनाने के लिए चार जनों ने मिलकर उसके दोनों हाथ तथा दोनों पैर पकड़े और उसे उठाकर उसके घर छोड़ आये। सेठानी ने उनकी हालत देखी तो समझ गई कि निश्चित ही सेठजी ने भोजन ज्यादा कर लिया है। वह भी उसकी मजाक बनाने के लिए हाजमोला की गोली और पानी का गिलास लेकर आई और बोली सेठजी, यह गोली खा लो, अभी पेट ठीक हो जायेगा। सेठजी तमक कर बोले- वाह री ! तू भी मूर्खा ही है। यदि मेरे पेट में गोली जितनी जगह होती तो मैं एक गुलाबजामुन और नहीं खा लेता। देखिए, ऐसे विचक्षण लोग भी होते हैं जो बिना सोचे-समझे खाकर भी शर्मिन्दा नहीं होते हैं, अपनी इज्जत का भी ख्याल नहीं रखते हैं। उनको लोग किस दृष्टि से देखते होंगे, भगवान ही जाने। अभक्ष्य और अनावश्यक खाने वाले को लोग अपनी भाषा में ‘पेटू’ की उपाधि से अलंकृत करते हैं। जो ज्यादा खाता है उसके साथ बैठकर कोई भोजन करना पसन्द नहीं करता है और न ही कोई उसको अपने घर बुलाना पसन्द करता है।

कभी-कभी तो अनावश्यक खाने वाला याचना करके अपनी अवज्ञा कराने में भी नहीं चूकता है। कहने का आशय यह है कि व्यक्ति जिह्वा के वशीभूत होकर इतना व्यवहार तोड़ देता है जो जीवन भर के लिए चुभता रहता है। सच में, आदमी का सबसे ज्यादा व्यवहार भोजन के निमित्त से ही टूटता है। भोजन को लेकर ही अधिकतर देवरानी-जेठानी के बीच में लड़ाई होती है। इस भोजन के निमित्त से ही आदमी दूसरे की आँखों में धूल झोंकता है, चोरी करके खाता है,.... इन बातों का विचार करके **पापों से बचने के लिए अनावश्यक भोजन अवश्य ही छोड़ देना चाहिए।**

उपसंहार

लोक में कहावत है कि ''जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन, जैसा पीवे पानी वैसी होवे वाणी।'' जो व्यक्ति जैसा, जिसके हाथ का, जैसे स्थान में बैठकर एवं जैसे भाव वालों के हाथ का भोजन करता है; उसका वैसा ही मन अर्थात् विचार बनता है, वैसा ही उसके जीवन में उत्थान-पतन होता है। इसीलिए कहा है कि 'भोजन कीजे जान के, और पानी पीजे छान के।' जो व्यक्ति अनजान या पापी व्यक्ति के हाथ का भोजन करता है, उसके पाप रूप विचार उत्पन्न होते हैं। इसलिए व्यक्ति के विचार, घर, स्थान आदि जान/विचार करके भोजन करना चाहिए अथवा मैं क्या खा रहा हूँ अर्थात् ये चीज क्या है, इसको खाने से मेरे विचार, शरीर एवं स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा आदि विचार करके भोजन, या कोई भी पदार्थ खाना चाहिए। कई बार जिस चीज को कभी देखा नहीं है, खाया नहीं है, किसी को खाते हुए देखा नहीं है उस वस्तु को भी क्षुधा से व्याकुल होकर अथवा उसके रंग, रूप, गंध से आकर्षित हो कर खा लेने से मृत्यु को प्राप्त हो सकते हैं, विष चढ़ सकता है, बीमार पड़ सकते हैं। कभी-कभी अच्छा दिखने वाला भोजन भी अनजान व्यक्ति के हाथ का है तो सम्भव है विषाक्त हो। अत: **हमें सोच-समझकर शरीर, स्वास्थ्य तथा धर्म की रक्षा करने वाला शुद्ध, सात्विक भोजन करना चाहिए** और योग्य स्थान एवं योग्य व्यक्ति के हाथ का ही भोजन करना चाहिए ताकि हमारा जीवन सार्थक बने।

अग्नि सम्बन्धी सावधानियाँ

संसार में प्रत्येक जीव के जीवन में अग्नि की आवश्यकता पड़ती है अग्नियाँ अनेक प्रकार की हैं। जठराग्नि, दावाग्नि, बड़वाग्नि, चूल्हे की अग्नि, विद्युत् की अग्नि आदि। इन सबकी उत्पत्ति किसी-न-किसी के निमित्त से होती है। वह निमित्त कभी अचेतन होता है तो कभी चेतन। जठराग्नि पेट में भोजन पचाने का काम करती है। दावाग्नि जंगल में तथा बड़वाग्नि समुद्र में उत्पन्न होती है। इन सबका यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं है। चूल्हे, गैस, विद्युत् आदि के माध्यम से भोजन पकाकर शरीर की रक्षा की जाती है। विद्युत् के माध्यम से ही कम्प्यूटर, टार्च, फैक्ट्री एवं घर को प्रकाशित करने के लिए बल्ब आदि का उपयोग होता है। विद्युत् के माध्यम से खेल-खिलौनों से खेल कर, फव्वारे आदि देखकर टी.वी. रेड़ियो आदि सुन / देखकर मनोरंजन का कार्य भी सिद्ध होता है। सौर ऊर्जा से भी एक अग्नि उत्पन्न होती है जिससे फसल, फल, पुष्प, घास-फूस आदि उत्पन्न होते हैं, पुष्ट होते हैं, पकते हैं और सूखे अनाज, सूखे मेवा, दाल-चावल आदि को त्रस जीवों की उत्पत्ति से बचाकर सुरक्षित रखा जाता है, अनेक प्रकार की औषधियाँ तैयार की जाती हैं, शरीर में भी धूप का सेवन करके अनेक रोगों से बचा जा सकता है। कहने का आशय यह है कि इस औदारिक शरीर की रक्षा करने के लिए अग्नि भी अति आवश्यक वस्तु है।

हमारे देश में मुख्य रूप से दो अग्नियों पर सबसे ज्यादा व्यय होता है। (१) भोजन बनाने के लिए ईंधन रूप से प्रयोग की जाने वाली गैस, लकड़ी, कोयला आदि। (२) कम्प्यूटर, मोबाइल, फोन-फैक्स, लाइट आदि में खर्च होने वाली विद्युत्।

इन दोनों का उपयोग करते समय हिंसा अनिवार्य रूप से होती है। लेकिन घर में रहते हुए इनके बिना काम नहीं चल सकता है तथापि इनका विवेकपूर्वक उपयोग किया जाये तो काफी हद तक पापों से बचा जा सकता है और इनको अनावश्यक बरबाद करके भारी पापों का आस्रव करके दुर्गति का पात्र भी बना जा सकता है।

यद्यपि हम अपने दिमाग से अथवा जानबूझ कर शायद इनको व्यर्थ समाप्त नहीं करते, लेकिन प्रमाद के कारण या लापरवाही से कितनी विद्युत्/ ईंधन को हम व्यर्थ जलाकर नष्ट कर देते हैं। हमारी आँखों के सामने व्यर्थ जलते हुए बल्ब आदि को भी बन्द करने का विचार नहीं करते हैं। कई लोग जहाँ अपनी जेब का पैसा खर्च होता है वहाँ तो काफी विवेक से लाइट का उपयोग करते हैं लेकिन जहाँ सरकारी या दूसरे का पैसा खर्च हो रहा हो वहाँ अंधा-धुंध लाइट-पंखे-कूलर आदि चलाते रहते हैं, बेपरवाह हो जाते हैं, ''घोड़े बेचकर ही सो गये हों'' वाली कहावत चरितार्थ करते हैं। ऐसा करने से भले ही उनकी जेब का एक भी पैसा खर्च नहीं होता है लेकिन पाप की गठरी भारी और सामने वाले के प्रति कृतघ्नता तो व्यक्त हो ही जाती है। संसार में कृतघ्न सबसे बड़ा अपराधी/दुष्ट, पापी व्यक्ति माना जाता है। जो समझदार/सज्जन व्यक्ति होते हैं उनकी दृष्टि में पैसे का नहीं, वस्तु का मूल्य होता है। देश की सम्पत्ति का महत्त्व होता है, अहिंसा का महत्त्व होता है, यही कारण है कि उसको इस लोक में प्रतिष्ठा तथा सबसे प्रेम मिलता है और अगले भव में भी सद्‌गति प्राप्त होती है।

अग्नि/लाइट का कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे दुरुपयोग करते हैं अथवा उपयोग करते समय विवेक नहीं रखते हैं, उस पर थोड़ा-सा प्रकाश यहाँ पर डाला जाता है-

(१) बच्चों को खिलाते समय (२) मंदिर में

(३) दान देते समय (४) घर में (५) सामाजिक स्तर पर।

बच्चों को खिलाते समय

कई लोग बच्चे का रोना/मचलना बन्द करने के लिए लाइट के स्विच के पास खड़े हो जाते हैं और बार-बार स्विच को बन्द चालू करते हैं जिससे उस स्विच से जलने वाला बल्ब भी बन्द-चालू होता रहता है। कभी आपने सोचा है आपकी इतनी सी क्रिया से कितना नुकसान हो गया ? कितना पाप लग गया ? बच्चे में कैसे संस्कार पड़ गये ? शायद आपने-हमने कभी नहीं सोचा होगा, हमारा लक्ष्य तो मात्र बच्चे का रोना बन्द करना है। रोते हुए बच्चे को चुप करना आवश्यक है लेकिन हिंसात्मक/पापात्मक पदार्थों से ही हम बच्चे को चुप करें यह आवश्यक नहीं है। बच्चे को लाइट के स्विच को ऑन ऑफ कर रोना बन्द करने से होने वाली हानियाँ-

(१) बल्ब फ्यूज हो सकता है। (२) स्विच ढीला हो जायेगा। (३) बच्चे की ऐसी आदत पड़ने पर बच्चा बार-बार इस क्रिया से ही रोना बन्द करेगा। (४) बच्चा भी ऐसा करना सीख जायेगा तो भविष्य में दुर्घटना की भी सम्भावना है।

कई लोग बच्चों के खेलने के लिए केसिट वाले खिलौने खरीदते हैं, चाबी भरते हैं, खिलौना नाचता है, कूदता है, गाता है, बच्चा उससे खुश होता है लेकिन क्या बिना लाइट वाले खिलौने से बच्चे को नहीं खिलाया जा सकता है? बिना चाबी/कैसेट वाले खिलौने भी बच्चों का अच्छा मनोरंजन कर सकते हैं।

कई लोग तो चाबी वाला खिलौना हाथ में आने पर उसमें बार बार चाबी भरेंगे, बुलवायेंगे, नचायेंगे, दौड़ायेंगे, यह भी तो अनावश्यक ही है। इसमें भी तो सेल से अग्नि उत्पन्न होकर नष्ट होती ही है। हाँ, कभी-कभी एक-आध बार मनोरंजन के लिए ऐसा कर लिया जाय तो माफ हो सकता है। लेकिन बार-बार ऐसा करना तो अनुचित ही है।

कई लोग गाना चालू करके मोबाइल ही बच्चे को पकड़ा देते हैं। बच्चा मोबाइल को कान पर लगाकर सुनता हुआ खुश हो जाता है। क्या आपको पता है उस मोबाइल की लाइट का बच्चे की मासूम नसों पर, शरीर के अंगोपांगों पर, उसके मस्तिष्क एवं कान के पर्दों पर क्या प्रभाव पड़ता है? आज डॉक्टरों का कहना है कि मोबाइल का ज्यादा उपयोग करने वाले के मस्तिष्क में बीमारियाँ होने की पूरी सम्भावना है। यहाँ तक कि मोबाइल को जेब, बेल्ट आदि में जहाँ रखा जायेगा वहाँ की हड्डियों में भी बीमारी हो जायेगी। इसके परिणाम वर्तमान में भले ही तत्काल नहीं दिखाई दे रहे हों लेकिन २०-२५ वर्ष के बाद इसके परिणाम ७५-८०% लोगों पर दिख सकते हैं, दिखेंगे। आपने तो अपने आप को बचाने के लिए बच्चे को मोबाइल पकड़ा दिया लेकिन आपने उसके जीवन के साथ कितना बड़ा खिलवाड़ कर दिया। कई लोग बच्चों से परेशान होकर उन्हें वीडियो गेम खेलने में लगा देते हैं। बच्चे घण्टों वीडियो गेम खेलते रहते हैं। मोबाइल या वीडियो गेम देखने से एक-दूसरे को मारने, हराने, भगाने आदि के संस्कार पुष्ट होते हैं जो आगे जाकर आपकी वृद्धावस्था में भी फलित हो सकते हैं। **अथवा** बच्चे को चुप कराने के लिए टी.वी. के सामने सुला देते हैं। आपने कभी सोचा है कि रंगीन टी.वी. देखने से आई-कैंसर हो सकता है, चश्मा तो लग ही जाता है और पढ़ाई-लिखाई, मम्मी-पापा के काम में हाथ बँटाना आदि सब समाप्त हो जाते हैं तो क्या वीडियो गेम खेलने की आदत पड़ने पर उपर्युक्त हानियाँ नहीं होंगी? आर्थिक दृष्टि से भले ही लोग कहते हैं कि थोड़े से पैसे लगते हैं लेकिन हिंसा और आर्त्त-रौद्र ध्यान तो हमेशा चलते ही रहते हैं। यह भी एक अनर्थदण्ड है। इन सबसे बच्चे को प्रसन्न रखने में बच्चा मात्र रोएगा नहीं। आपको बच्चे की बालक्रीड़ा का आनन्द तो नहीं आ पायेगा, आप बच्चे के साथ खेलने का आनन्द तो नहीं ले पायेंगे। आपका आपसी वात्सल्य और आत्मीयता तो नहीं बढ़ पायेगी, आखिर क्या फायदा हुआ इस प्रकार बच्चे को चुप करा देने से घर में बच्चे के होने का। इसी प्रकार रोते हुए बच्चे को टी. वी. के सामने सुलाकर, बैठाकर भी हम उतना ही नुकसान कर लेते हैं जितना मोबाइल आदि देकर कर लेते हैं।

टीवी मोबाइल जब चलते हैं तब लाइट अवश्य ही जलती है। टीवी कुछ समय के लिए, किसी समय में मनोरंजन का साधन हो सकता है, मोबाइल व्यापारादि में अथवा विशेष परिस्थितियों के समय में किसी अपेक्षा उपयोगी है, परन्तु इनका

इस प्रकार दुरुपयोग करके अपने जीवन को दु:खी बनाना, पापों का आस्रव करना एवं ईंधन/विद्युत् का नाश करना एक बहुत बड़ा अनर्थदण्ड है। **हम टीवी, मोबाइल का उपयोग समझें, बच्चों का अहिंसक खिलौनों से मनोरंजन करके पापों से बचना ही सार है।**

आप सोचें एक पल मात्र मोबाइल, टी.वी. आदि चलाने में असंख्यात अग्निकायिक जीवों की हिंसा होती है। चाहे वह लाइट/विद्युत् चार्ज से प्राप्त हो, बैटरी, सेल, इनवर्टर से उत्पन्न हो, उतनी ही हिंसा होती है। यद्यपि एक पल/क्षण मात्र के लिए मोबाइल आदि चलाने का मूल्य बहुत अल्प है, नहीं के बराबर है लेकिन मूल्य से हिंसा का सम्बन्ध ही क्या है। मूल्य तो वस्तु की उपलब्धता एवं आवश्यकता पर आधारित है।

कहने का आशय यह है कि हम अपने बच्चों को मोबाइल, टी.वी. आदि के स्थान पर कोई अन्य खिलौने देकर, भजन-कथा आदि सुनाकर भी खुश कर सकते हैं। रोते हुए को चुप कर सकते हैं। पुराने जमाने में ये सब व्यवस्थाएँ/वस्तुएँ नहीं थीं तो भी माता-पिता अपने बच्चों को खुश रखते ही थे। आज भी जिनके घर में ये चीजें नहीं हैं वे भी अपने रोते हुए बच्चों को चुप करते ही होंगे.....। हम भी विवेकपूर्वक बच्चों का मनोरंजन करें, बच्चों को हानि से बचावें एवं हम स्वयं पापों से बचें। अनर्थक पाप एवं आर्थिक व्यय से बचें।

भजन सुनाकर या कहानी, पौराणिक कथायें आदि सुनाते हुए बच्चों को भोजन कराने, रोते हुए को चुप करने से दूसरा लाभ यह होगा कि हमारे बच्चों में अच्छे संस्कार पड़ेंगे क्योंकि हमारे भावों का संप्रेषण बच्चे तक अवश्य पहुँचेगा। बच्चे को सुनाते समय हमारे भाव अच्छे ही रहेंगे। उन भावों से हमारे बच्चे में पौराणिक महापुरुषों के प्रति बहुमान उत्पन्न होगा।

एक महिला ने बताया कि ''मैंने अपने बच्चों को हमेशा णमोकार मंत्र, भजन, स्तुति आदि सुनाकर ही रोने से चुप किया। जब तक ७-८ वर्ष के हुए तब तक तो बिना भजन / कथा सुने वे भोजन ही नहीं करते थे। उसी का फल है कि आज १८-२० वर्ष के हो गये, कॉलेज में पढ़ते हैं तो भी यद्वा-तद्वा नहीं खाते हैं, इधर-उधर उल्टे-सीधे काम नहीं करते....। मोबाइल और टी.वी. से बचा लेने पर तीसरा यह संस्कारों का अपूर्व लाभ भी हमें होगा।

मंदिर में

जहाँ हम पापों का क्षय करने के लिए जाते हैं वहीं जाकर पहला महापाप तो हम पंखा तथा लाइट जलाने का करते हैं जबकि हम २४ घंटे में से मात्र १५-२० मिनट अथवा अधिक-से-अधिक यदि कोई बड़ा धर्मात्मा है तो आधा-पौन घंटा मंदिर में रहता है फिर भी मंदिर में प्रवेश करते ही पहले लाइट तथा पंखे का स्विच दबाता है, लाइट का नहीं भी दबावे तो पंखे का तो दबाता ही है। क्या हम एक-आध घंटा भी बिना पंखे के नहीं रह सकते हैं? क्या लाइट के चले जाने पर हमें बिना पंखे के नहीं रहना पड़ता है? हमारे घर की यदि आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी तो क्या हम बिना पंखे के नहीं रहेंगे, यदि ड़ॉक्टर ने हमें पंखे की हवा खाने के लिए मना कर दिया या हमें पंखे की हवा से तकलीफ होने लगी तब भी क्या हम पंखे की हवा में ही रहेंगे? नहीं, हम मजबूरी में सब विषयभोगों को छोड़ सकते हैं, तो क्या हम अपने आत्मकल्याण के लिए एक घण्टा बिना पंखे के नहीं रह सकते हैं। हम पंखा चलाने का पहला पाप तो करते ही हैं लेकिन उसके साथ दूसरा पाप यह और कर लेते हैं कि पंखा चलता हुआ छोड़कर चले जाते हैं अथवा जब लाइट चली जाती है तो हम यह ध्यान नहीं दे पाते हैं कि हमने लाइट, पंखे का स्विच बन्द भी किया या नहीं ? लाइट आने के बाद दिन भर/रात भर पंखा चलता रहेगा। आपको कितना पाप लगेगा, बिना प्रयोजन कितनी उपयोगी बिजली बरबाद होगी। छोटे-बड़े त्रस जीवों की बात तो बहुत दूर, चिड़िया तथा कबूतर जैसे बड़े-बड़े जीव तक पंखे में आकर मर जाते हैं, टकरा कर हमारी पूजन की थाली, शास्त्र या हमारी गोदी में आकर गिरते हैं। जिसके सामने ऐसी घटना घटती है उसको तो शायद जीवन भर इस पाप (मंदिर में पंखा चलाने) के प्रति ग्लानि आती रहती होगी। कई लोग पंखे पर जाली लगाकर मन को संतुष्ट कर लेते हैं अर्थात् यह मान लेते हैं कि हम मंदिर में पंखा चलाकर भी पापों से बच गये हैं लेकिन छोटे-मोटे जीवों की हिंसा से तो जाली लगाने के बाद भी नहीं बचा जा सकता है और सबसे बड़ा पाप तो हम मंदिर जैसे स्थान में आकर भी स्पर्शन इन्द्रिय के विषयभोग से नहीं बच पाये तो कहाँ जाकर बच पायेंगे/बच सकते हैं ?

कई लोग मंदिर में भी हेलोजिन, मर्करी आदि जलाते हैं उनसे कभी-कभी तो हजारों कीड़े, पतंगे आदि उत्पन्न होते हैं। लाइट से टकरा-टकरा कर मर जाते

हैं। कई लोग तो हमेशा ही मंदिर में सजावट के रूप में लाइटिंग किये रहते हैं। लाइटिंग करना कोई भगवान के प्रति विशेष बहुमान नहीं कहा जा सकता है। हाँ, कोई विशेष पर्व हो, विशेष कार्यक्रम हो, उन दिनों में लाइटिंग करना तो फिर भी समझ में आता है लेकिन हमेशा लाइटें जलाये रखने में तो कोई धर्म नहीं कहा जा सकता है। कई लोग कहते हैं कि माताजी! कोई विशेष खर्चा नहीं लगता और मंदिर अच्छा भी लगता है। लेकिन वे यह नहीं सोचते हैं कि लाइट का उत्पाद होने में कितनी हिंसा होती है, जहाँ लाइट बनती है वहाँ जाकर यदि एक बार भी कोई देख ले तो शायद लाइट का उपयोग करते समय सोचने के लिए मजबूर जरूर हो जायेंगे।

कई लोग मंदिर में पर्याप्त प्रकाश है, दिन है, भगवान के दर्शन भी अच्छी तरह से हो रहे हैं फिर भी लाइट जलाए बिना दर्शन नहीं करते हैं, कई लोग तो सर्दी में भी पंखा चलाकर माला फेरते हैं, यह अनर्थक नहीं है तो क्या है ? मुझे तो लगता है कि हमारा एक प्रकार से बिजली जलाने का व्यसन है।

कई मन्दिरों में तो रात-भर मंदिर के बाहर, मंदिर के अन्दर तथा गर्भगृह आदि सभी स्थानों पर लाइटें जलती रहती हैं। मंदिर में रात-भर प्रकाश रहे यह तो फिर भी थोड़ा उचित है लेकिन इतने सारे स्थानों पर बड़े-बड़े बल्ब जलाये रखना तो विचारणीय ही है। हाँ, गली में मंदिर है वहाँ सरकारी रोशनी की कोई व्यवस्था नहीं है, अंधेरा रहता है तो फिर भी ठीक है कि आने-जाने वाले लोगों को भी मन्दिर की रोशनी से सुविधा रहती है लेकिन सरकारी लाइट लगी हुई है तो वहाँ लाइट जलाये रखना अनुचित ही नहीं महापाप है।

कई मन्दिरों/धर्मशालाओं के भण्डार घर में से कोई सामान निकालते समय लाइट जलाते हैं लेकिन बन्द करते समय स्विच बन्द करना भूल जाते हैं वह लाइट जब तक हम वापस सामान निकालने के लिए भण्डार नहीं खोलते हैं तब तक जलती रहती है। हमें उसका कितना अनर्थक पाप लगता होगा ? हम सोचें एवं मंदिर में होने वाले लाइट सम्बन्धी पाप से तो अवश्य बचें।

दान देते समय

कई लोग मंदिर में पंखे का दान करते हैं। पंखा किसी भी अपेक्षा से धर्म का उपकरण नहीं हो सकता है और न ही वह कभी धर्मकार्य में सहायता ही देता है क्योंकि पंखा स्पर्शन इन्द्रिय का विषयभोग है। हाँ, पंखा धर्मकार्य में विघ्न अवश्य करता है, कभी लड़ाई, मनमुटाव, बोलाचाली भी करवा देता है तो कभी कबूतर, चिड़िया जैसे बड़े-बड़े जीवों की मृत्यु का निमित्त बनकर पूजा-आराधना करने वाले के दिल में जीवनभर के लिए एक टेंशन अवश्य करवा देता है। इसी प्रकार हेलोजन, गीजर, बड़ी-बड़ी ट्यूब लाइटें, १००० वाल्ट का बल्ब, भट्टी आदि देना भी महान् पापास्रव के कारण ही हैं।

कई लोग निर्ग्रन्थ साधु को भी, जो एक तार का/एक अणु का भी परिगृह नहीं रखते हैं उनको भी फोन, मोबाइल, टार्च, टीवी, लेप-टॉप आदि जिनका उपयोग लाइट/बैटरी के बिना हो ही नहीं सकता है, दान में देते हैं। यद्यपि साधु उन पदार्थों को गृहण नहीं करते हैं फिर भी देने वाले को देने के भावों का, अविवेक का फल तो मिलेगा ही।

नोट : मन्दिर में गैस, सिगड़ी, बत्ती का स्टोव आदि अभिषेक तथा पूजन का द्रव्य धोने का पानी गर्म करने के लिए देने में कोई दोष नहीं है क्योंकि ये चीजें कथञ्चित् उपयोगी हैं। इनसे विशेष हिंसा नहीं होती है अपितु इनके माध्यम से द्रव्य धोकर के, अभिषेक करके पूर्वोपार्जित पापों का क्षय तथा भविष्य के लिए अपूर्व पुण्य उपार्जन किया जा सकता है। इसी प्रकार दीपक, धूपदान, हवन आदि के लिए कपूर, घी, ईंधन, दीपक जलाने के लिए माचिस मंदिर में प्रकाश के लिए बल्ब, ट्यूब आदि देना भी अनर्थदण्ड नहीं है।

घर में

जिनकी दृष्टि में पैसे का कोई महत्त्व नहीं है उन घरों में भी इसी प्रकार/अनावश्यक लाइट-पंखे चलते रहते हैं। हवा खाने वाला कोई हो या न हो पंखा चलता रहता है। कई घरों/दुकानों के बाहर की लाइट जलती रहती है। कई दुकानों में तो रात भर बड़ी लाइट जलती रहती है। ठीक है, यदि आपको यह विकल्प है कि हमारी दुकान में रात में भी अंधेरा नहीं रहे तो नाइट बल्ब से भी प्रकाश किया जा सकता है। घर-दुकान के बाहर भी सामान्य रूप से नाइट-बल्ब लगाकर काम चलाया जा सकता है।

कई लोग जहाँ सोते हैं वहाँ पर भी बड़ा बल्ब जलाए रखते हैं जबकि नाइट लैम्प का आविष्कार ही इसीलिए हुआ है कि रात्रि के समय बड़े बल्ब जलाकर

व्यर्थ में बिजली नष्ट न की जावे। रात्रि में बड़ी लाइट जलाने से आँखों पर भी उसका प्रभाव पड़ता है, सोकर उठने के बाद भी आँखें चुँधियाई सी रहती हैं।

कई लोग पानी गरम करते समय कम पानी में रॉड डालकर खूब गरम कर लेते हैं फिर उसमें ठण्डा पानी मिलाकर नहाते/काम में लेते हैं। इससे डबल नुकसान हो जाता है। पहला, अधिक बिजली खर्च हो जाती है और दूसरा, उसमें जो ठण्डा पानी मिलाया जाता है उसके जीव भी नष्ट हो जाते हैं।

कई लोग लाइट-टॉर्च आदि हाथ में आने पर बार-बार उसके स्विच को चटकाते (दबाते) रहते हैं। माचिस हाथ में आ जावे तो उसमें से तूलियाँ निकाल कर जलाते रहते हैं। कभी-कभी तो पूरी माचिस खतम कर देते हैं। टॉर्च आदि को बार-बार जलाने से अग्नि सम्बन्धी जीवों की अनर्थक हिंसा तथा टॉर्च खराब होना आदि अनेक नुकसान होते हैं।

कई लोग टीवी चलाकर इधर-उधर भागते रहते हैं, इधर-उधर के काम करते रहते हैं। कई लोग तो बिस्तर पर लेटकर टीवी देखते हैं, उनकी कब नींद लग जाती है उन्हें पता ही नहीं चलता है और घंटों/रात भर टी.वी. व्यर्थ ही चलती रहती है, क्या यह बिजली का अनर्थक व्यय नहीं है?

एक बार रात्रि में हम लोग एक धर्मशाला में सो रहे थे। उसी धर्मशाला में मंदिर का पुजारी भी रहता था। रात्रि में बारह बजे जब नींद खुली तो पुजारी जी के घर से टीवी की आवाज आ रही थी। पुन: दो-ढाई बजे नींद खुली तब भी पुजारी जी के घर से टीवी की आवाज आ रही थी अर्थात् उनके यहाँ टीवी चल रही थी। प्रात: मैंने पुजारी जी की पत्नी से पूछा- तुम लोग रात भर टीवी देखते हो तो सोते कब हो ? पुजारिन ने कहा- नहीं, माताजी ! हम लोग रात-भर टीवी नहीं देखते हैं। मैंने कहा-हमने तो रात में बारह और दो-ढाई बजे भी टीवी की आवाज सुनी थी। उसने कहा- माताजी! पुजारी जी को जब भी रात में नींद नहीं आती है तो वे टीवी चला कर बैठ जाते हैं। टीवी देखते-देखते वे कब सो जाते हैं, उन्हें पता ही नहीं चलता है इसलिए कई बार हमारे घर रात-भर टीवी चलती रहती है। एक समझदार व्यक्ति भी यदि प्रमाद से रात भर टीवी चलती हुई छोड़ सकता है तो बच्चे टीवी खुली छोड़ दें तो क्या आश्चर्य है ? हम थोड़ा सा प्रमाद छोड़कर टीवी बन्द करके सोएँ तो कितनी बिजली बच सकती

है, कितने पापों के भार से बच सकते हैं।

इसी प्रकार कई लोग टेप रिकार्डर/रेडियो चलाकर अपने काम में लग जाते हैं। केसेट/सीडी खतम होने पर बदल देते हैं लेकिन यदि उनसे पूछा जाय कि तुमने तीन-चार घण्टों में क्या सुना तो वे कितना बता पायेंगे, आप स्वयं सोचें।

कई लोग एक कमरे से जब दूसरे कमरे में चले जाते हैं तो भी लाइट पंखा बन्द करके नहीं जाते हैं, वे सोचते हैं कि अभी तो वापस आना ही है, ५-७ मिनट में तो आ ही जाऊँगा। कहने में तो ५-७ मिनट ही आते हैं लेकिन लौटते-लौटते १०-१५ मिनट तो हो ही जाते हैं। दस-पन्द्रह मिनट तक लाइट व्यर्थ ही जलती रहती है। यदि लाइट बन्द करके जाते तो हम अनर्थदण्ड से बच सकते थे।

कई लोगों का कहना होता है कि बार-बार लाइट बन्द करने से स्विच ढीला हो जाता है, बल्ब फ्यूज हो सकता है इसलिए हम बार-बार लाइट बन्द नहीं करते हैं। ऐसा कहने वालों को सोचना चाहिए कि बार-बार लाइट बन्द करने से दो-चार साल में एक स्विच खराब हो भी गया या एक बल्ब फ्यूज हो भी गया तो इतना पैसा खर्च नहीं करना पड़ेगा जितने पैसे की लाइट जल जायेगी। अत: बार-बार लाइट बन्द करने में ही दोहरा लाभ होगा।

कोई कहते हैं कि बार-बार लाइट बन्द करने से हिंसा होती है, असंख्यातों अग्निकायिक जीव अकाल में मरण को प्राप्त हो जाते हैं इसलिए लाइट जलने देना ही अच्छा है। ऐसा भी नहीं है क्योंकि लाइट को बन्द करने से तो अग्निकायिक जीवों की हिंसा होती है लेकिन लाइट जलने में तो असंख्यात त्रस जीवों की हिंसा होती है। जहाँ लाइट जलती है वहाँ अधिकतर मच्छर, कीड़े आदि उत्पन्न होते हैं और वहाँ छिपकली भी रहती है। वह छिपकली उन मच्छर आदि को खाती रहती है एक तो यह त्रस हिंसा, दूसरे जहाँ लाइट का उत्पादन होता है वहाँ पर भी लाखों-करोड़ों मछलियाँ आदि जलचर जीवों का मरण होता है। लाइट पानी से उत्पन्न होती है जहाँ पानी भरा रहता है वहाँ निश्चित रूप से मछली-मेंढ़क-कछुआ आदि जीव उत्पन्न हो ही जाते हैं। बिजली उत्पादन के समय वे सब जीव मरण को प्राप्त हो जाते हैं, इसलिए लाइट बन्द करने में ही ज्यादा फायदा है।

सामाजिक स्तर पर

कभी-कभी सामाजिक कार्यों में किसी की जिम्मेदारी नहीं होने से या विशेष

ध्यान नहीं देने के कारण 'एम्प्लीफायर' (जिससे माइक चलता है) बन्द नहीं करते हैं तो दूसरे दिन तक उसमें बिजली जलती रहती है। भले ही माइक नहीं भी चले, स्लो स्पीड में लाइट तो जलती ही रहती है।

कई-कई ऑफिस, स्कूल, अस्पताल आदि में पर्याप्त प्रकाश होने पर भी पूरे दिन लाइट जलती रहती है। कभी-कभी तो लाइट बन्द करना भूल जाने पर या लाइट चली जाने पर स्विच बन्द करना भूल जाने पर रात-भर भी जहाँ कोई नहीं है तो भी लाइट-पंखे चलते रहते हैं, आदि। यदि बीच में छुट्टियाँ हों तो इतने समय/इतने दिन तक व्यर्थ में लाइट-पंखे सम्बन्धी विद्युत् खर्च होती ही रहती है। अत: यदि ऑफिसर, चपरासी आदि सावधानी रखें तो बहुत सारी विद्युत् बचायी जा सकती है और उससे होने वाले पाप से भी बचा जा सकता है।

कई स्थानों के विद्युत् विभाग वाले कर्मचारी भी इतने आलसी/लापरवाह होते हैं कि दिन हो जाने पर भी अर्थात् सुबह सात और आठ बजे तक सड़क की लाइटें बन्द नहीं करते हैं। हम सोचें, शहर में हजारों की संख्या में मरकरी, बल्ब, ट्यूब आदि लगे रहते हैं उनसे एक सैकेंड में कितनी बिजली खर्च हो जाती है। बन्द करने में एक सैकेंड लेट होने मात्र से कई यूनिट लाइट व्यर्थ चली जाती है तो दो-तीन घंटे तक अनावश्यक लाइटें जलती रहने पर हमारे देश की कितनी बिजली व्यर्थ नष्ट हो जाती है। एक तरफ तो लाइट बचाने या पूर्ति के लिए लाइट काटी जाती है अर्थात् लाइट नहीं दी जाती है और दूसरी तरफ इतनी लाइट व्यर्थ खर्च हो जाती है। अत: विद्युत् विभाग के कर्मचारियों को सावधानी रखनी चाहिए।

कई स्थानों पर नहाने-धोने के लिए पानी गरम होता है। वहाँ पानी गरम होने के बाद भी बहुत देर तक चूल्हा जलता ही रहता है। क्या इसमें अनर्थक ईंधन नहीं जल रहा है? अनर्थक हिंसा नहीं हो रही है? इस प्रकार चूल्हा, सिगड़ी जलते रहने पर छिपकली, गिलहरी, मेंढ़क आदि जीव आकर गिरकर मर जाते हैं, उस हिंसा का पाप भी हमें लगता है।

कई खेतों में भी पूरे दिन लाइट जलती रहती है, किसान गरीब होने पर भी चोरी की, चोरी से ली हुई लाइट होने के कारण इस बात पर ध्यान नहीं दे पाते हैं।

कई बार दीपावली, रक्षाबन्धन, बर्थ-डे, शादी आदि में अथवा मंदिर में कोई फंक्शन चल रहा हो तो लाइटिंग से सजावट की जाती है। सजावट करना अनावश्यक नहीं है लेकिन पूरी रात जलाए रखना आवश्यक नहीं है। जब तक कार्यक्रम चल रहा हो, लोगों का/राहगीरों का आना-जाना लगा हो तब तक तो फिर भी लाइट जलाये रखना उचित है लेकिन कार्यक्रम पूरा हो जाने के बाद सो गये हैं, फिर भी लाइटिंग किये रहना तो कोई सही नहीं लगता है। कई लोग तो दिन में भी लाइट बन्द नहीं करते हैं। आखिर दिन में लाइटिंग से लाभ ही क्या है? सूर्य के प्रखर प्रकाश में इन छोटी-छोटी लाइटों का महत्त्व ही क्या है? फिर भी हम प्रमाद नहीं छोड़ पाते हैं तो पाप से भी कैसे बच सकते हैं। हमें विवेक पूर्वक कार्य करके पापों से अवश्य बचना चाहिए।

इसी प्रकार बच्चे जब पढ़ते हैं तब भी हो जाता है। बच्चे पढ़ते-पढ़ते कब सो जाते हैं और रात भर लाइट जलती ही रहती है।

कई लोग दिन में भी गाड़ी की लाइट जलाये रखते हैं। ट्रक, स्कूटर, बस आदि की लाइट में कितना ईंधन/तेल/पेट्रोल/डीजल जलता रहता है जहाँ हमारे देश को पेट्रोल खरीदने के लिए मछली आदि माँस जैसी हिंसात्मक चीज देनी पड़ती है। वहाँ हम थोड़े से प्रमाद से दिन में भी घंटों-घंटों गाड़ी की लाइट जलाए रखते हैं। इसी प्रकार कई लोग गाड़ी स्टार्ट करके भी बातें करते रहते हैं, कई बार तो रेलवे फाटक बन्द होने पर १५-२० मिनट तक भी गाड़ी निकलने का इंतजार करते रहते हैं लेकिन गाड़ी बन्द नहीं करते हैं। कई बुद्धिमान लोग तो गाड़ी स्टार्ट करके चाय पीने तक चले जाते हैं। मुझे समझ में नहीं आता है कि गाड़ी बन्द करने में कितना समय लगता है? कई लोग तो मोटर साइकिल आदि स्टार्ट करके मित्र/रिश्तेदार आदि को बुलाने के लिए चले जाते हैं। कई बार मैंने भी देखा है कि जब हम विहार करके पहुँचते हैं तो वहाँ गाड़ी स्टार्ट करके पाटा आदि लगाने में लग जाते हैं। सोचो, चाहे गाड़ी चल भी नहीं रही हो तो भी स्टार्ट करते ही गाड़ी में ईंधन जलना/अग्नि उत्पन्न होना प्रारम्भ हो जाता है। क्या यह अनर्थक नहीं है? यदि हम गाड़ी को, जब रवाना होना हो, तभी स्टार्ट करें और रुकते ही बन्द कर दें तो भी कितने पाप से बच सकते हैं एवं ईंधन को बचाकर देश की सहायता कर सकते हैं।

कई लोग बाथरूम की लाइट दिन-रात जलाये रखते हैं। यह सत्य है कि

बाथरूम के अन्दर अंधेरा होता ही है लेकिन हम बाथरूम में घुसने के साथ भी तो लाइट जला सकते हैं तथा निकलते समय बन्द कर सकते हैं। किसी का कहना रहता है कि रात में डर लगता है इसलिए बाथरूम की लाइट जलाना आवश्यक है। डर मिटाने के लिए घर में एक बल्ब तो जलता ही है उसका प्रकाश तो लगभग पूरे घर में रहता ही है। जो बहुत छोटे बच्चे हैं उनके साथ तो किसी एक को जाना ही पड़ता है। वह लाइट जला लेगा। जो बड़े बच्चे हैं वे स्वयं लाइट जला ही सकते हैं फिर रातभर बाथरूम की लाइट जलाना कहाँ आवश्यक है। मेरे विचार से तो घर के मुख्य स्थान पर यदि घर बहुत बड़ा नहीं है तो नाइट लैम्प से अच्छी तरह काम चल सकता है।

और भी अनेक स्थानों पर हम अग्निकायिक जीवों की रक्षा नहीं कर पाते हैं, ईंधन को व्यर्थ नष्ट करते हैं। उन सबको सोचकर ईंधन भी बचाना चाहिए और पापों से भी बचना चाहिए।

अनर्थक अग्नि जलाने से हानि :

(१) आर्थिक व्यय बढ़ता है।

(२) हिंसा का पाप लगता है।

(३) देश के प्रति कृतज्ञता/कर्त्तव्य पूरा नहीं होता है।

(४) व्यर्थ में ईंधन/बिजली नष्ट होती है।

उपसंहार

इस प्रकार हम लोग अनेक स्थानों पर अग्नि का दुरुपयोग करते हैं, अनावश्यक पापों का आस्रव करते हैं और ईंधन को व्यर्थ ही राख कर देते हैं। उपर्युक्त बातों को सुनकर / पढ़कर कोई यह भी सोच/कह सकता है कि यदि हम आपकी बातों में आ जायेंगे अर्थात् ईंधन को बचाना, जल्दी से गाड़ी को बन्द करना शुरू कर देंगे तो क्या लोग हमें कंजूस नहीं कहेंगे। लोग हमारी खिल्ली नहीं उड़ायेंगे..... ऐसी कोई बात नहीं है। अपव्यय/अनर्थक पापों से बचने के लिए हम ईंधन बचायेंगे। विवेकपूर्वक काम करेंगे तो मेरे अनुमान से तो आपको कोई भी कंजूस नहीं कहेगा। गाँधीजी ने अपने जन्मदिवस पर घी का दीपक नहीं जलाने दिया। इसका अर्थ क्या वे कंजूस थे ? लाला लाजपतराय ने लालटेन जलाने के लिए दूसरी तूली सुलगाते देख नौकर को डाँटा तो क्या वे कंजूस कहलाए ? नहीं, वे हमारे लिए आज भी आदर्श हैं, उनकी जीवन-गाथाओं की पुस्तकें लिखी गईं। उन पुस्तकों को सत्साहित्य की श्रेणी में रखा गया। ऐसे कार्य को हम गलत कैसे मान सकते हैं ? अतः हम थोड़ा विवेक से काम करें। गाड़ी चलाना, भोजन बनाना, लाइट जलाना आदि कार्य आवश्यक हैं लेकिन उसमें प्रमाद करना, लापरवाही से व्यर्थ ही अग्नि जलाकर ईंधन को नष्ट करना तो आवश्यक नहीं है। हम देश के नागरिक हैं हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने देश की/देश के नागरिकों की सहायता करें। विवेक पूर्वक कार्य करके ईंधन बचायें, पाप से बचें और दुर्गति से बचें।

भोग-उपभोग की सामग्री में

भोग - जो वस्तुएँ एक बार भोगने में आती हैं वे सब भोग की सामग्री कहलाती हैं, जैसे- रोटी, दाल, सब्जी, मिठाई आदि।

उपभोग - जो वस्तुएँ एक बार भोगकर पुन: पुन: बार-बार भोगी जाती हैं अर्थात् जिनका उपयोग बार-बार किया जा सकता है वे सब उपभोग की वस्तुएँ कहलाती हैं। जैसे-वस्त्र, आभूषण, मकान, दुकान आदि।

घर की प्रत्येक वस्तु भोग अथवा उपभोग में आती है। इसीलिए इन वस्तुओं को परिग्रह माना जाता है। उनमें से कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो शरीर के माध्यम से भोगी जाती हैं तो कुछ वस्तुएँ मन के माध्यम से भोगी जाती हैं। कई वस्तुओं का भोग आँखों से देखकर किया जाता है जैसे टीवी, सोने के बिस्किट, पुत्र-पौत्र आदि। कई वस्तुएँ कानों से भोगी जाती हैं, जैसे- रेडियो, टीवी, कैसेट, भजन, गीत, संगीत आदि। कई वस्तुओं का स्पर्श करने पर आनन्द आता है। जैसे- पाउडर, क्रीम, बिस्तर, कपड़े आदि। शरीर के माध्यम से जो भोग होता है वह सीमित मात्रा में ही होता है क्योंकि इसके लिए क्षमता, योग्य-स्थान, योग्य पदार्थ तथा इन सबके साथ मानसिक शान्ति भी आवश्यक होती है लेकिन मन की कल्पना से तो शरीर से भोगी जाने वाली करोड़ों वस्तुओं का भोग एक क्षण में किया जा सकता है। इसलिए मानसिक विचारों में हम कितना अनर्थक एवं कितना प्रयोजनभूत करते हैं इन सबको वैचारिक अनर्थदण्ड से जान लेना चाहिए। यहाँ शरीर, आँखों आदि के माध्यम से जिन वस्तुओं का भोग किया जाता है उनमें हम कितना अनर्थक

कर लेते हैं, उसके बारे में विचार किया जाता है।

घर में भोग की वस्तुएँ कुछ स्वयं के भोग की होती हैं तो कुछ वस्तुएँ पारिवारिक सभी सदस्यों के भोगने की होती हैं। घर की सभी वस्तुओं पर सभी का समान अधिकार नहीं होता है। घर के मालिक सेठ/सेठानी, गृहसंचालक का ही अधिकार होता है। फिर भी घर में कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिन पर घर के व्यक्ति विशेष का अधिकार होता है। जैसे-यह भैया की साइकिल है, यह पापा की गाड़ी है, ये मम्मी के आभूषण हैं, ये दीदी के सूट हैं, आदि। लेकिन घर में रखे जाने वाले गेहूँ, दाल, चावल, फर्नीचर आदि ऐसी चीजें हैं जिनका उपयोग घर के सभी लोग करते हैं। इसमें कोई रोक-टोक भी नहीं होती है अथवा यूँ कहना चाहिए कि वे सभी के भोग करने के लिए ही होती हैं अथवा ये वस्तुएँ सभी को लक्ष्य में रखकर ही खरीदी जाती हैं। घर में रखी जाती हैं। फिर भी इनका परिगृह अथवा अधिकार घर के किसी विशेष व्यक्ति/संचालक को ही होता है। जैसे घर का बच्चा घर में से दाल-चावल, गेहूँ आदि ले जाकर नहीं बेच सकता है, यदि बेचता है तो वह चोर कहलाता है लेकिन यदि मम्मी-पापा बेचते हैं तो चोर नहीं कहलाते हैं। इसका अर्थ यही है कि इन सामग्रियों का अधिकार घर के मालिक का ही है।

इन सब सामग्रियों को घर में रखना तो आवश्यक है लेकिन भावी आशंकाओं से भयभीत होकर पहले ही २-४ साल के लिए वस्तुएँ इकट्ठी कर लेना अथवा लोभ कषाय के वश होकर बहुत इकट्ठी कर लेना तो अनर्थक ही कहलाएगा। जैसे एक वर्ष में हमारे घर में ५ बोरा गेहूँ आवश्यक हैं लेकिन थोड़ा सस्ता देखकर अथवा 'कहीं अगली बार नहीं खरीद पाये तो' ऐसी आशंका करके इस वर्ष ही दो-तीन वर्ष के लिए १२-१५ बोरे गेहूँ खरीद कर रख लेना। इसी प्रसंग में मुझे एक बात याद आ गई। एक महिला ने बताया, ''माताजी! मेरे यहाँ १८-२० वर्ष पुराना जीरा रखा है।'' बताओ, क्या यह अनर्थक नहीं है, क्या बाजार में जीरा नहीं मिलता है? हाँ, इसके स्थान पर यदि चावल रखे होते, घी रखा होता तो कुछ उपयोगी ही कहलाता, संभव है वे कभी किसी रोगी के काम आ जाते। एक व्यक्ति के घर में साल भर के लिए आवश्यक सामग्रियाँ खरीदी जा चुकी थीं फिर भी वे जब यात्रा पर गये तो एक स्थान पर जीरा, धना, सौंफ आदि अच्छे वाले तथा सस्ते

मिल रहे थे, जितने घर में रखे थे उससे तीन गुणे और खरीद लाये, क्या यह अनर्थक नहीं है। घर में पाउड़र के दो ड़िब्बे रखे हैं फिर भी पाउडर का डिब्बा खरीद लाना, दीवार में आईना लगा है, अलमारी में भी दर्पण लगा है, एक छोटा दर्पण भी है फिर भी नया दर्पण खरीद लाना, दो मकान हैं, नये मकान की आवश्यकता भी नहीं है फिर भी नया मकान बनवाते रहना क्या अनावश्यक/अनर्थक नहीं है। घर में भोगोपभोग की विविध सामग्रियाँ हैं। उनमें कितनी आवश्यक हैं और कितनी अनावश्यक ? यह तो आप जानें अथवा समय पर समझ में आता है लेकिन जो वस्तुएँ आवश्यक जैसी लग कर भी अनावश्यक होती हैं उनमें से कुछ वस्तुओं पर यहाँ प्रकाश डाला जाता है-

(१) टीवी रखने में

(२) वस्त्राभूषण में

(३) औषधि में

(४) पुस्तकादि रखने में

(५) शो की वस्तुओं में

टी.वी. रखने में

कई लोगों के घरों में तो बैठक में टी.वी. अलग तथा प्रत्येक शयन कक्ष में टी.वी. अलग, इसप्रकार घर में दो-तीन परिवारों के बीच ४-५ टी.वी. होती हैं। क्या घर के सदस्यों में इतना भी प्रेम नहीं है कि वे मिलकर एक ही टी.वी. पर कार्यक्रम देख लें। इसका परिणाम यह होता है कि घर में दो बच्चे होते हैं तो मम्मी पापा उन दोनों के लिए अलग-अलग टीवी खरीदते हैं अथवा उन्हें खरीदनी पड़ती है क्योंकि जो कार्यक्रम भैय्या को पसन्द है वह बहिन को पसन्द नहीं और जो बहिन को पसन्द है वह भैय्या को पसन्द नहीं है। आप सोचें कि दो भाई-बहिन के बीच भी इतना प्रेम नहीं है कि वे दोनों एक ही टी.वी पर प्रोग्राम देख लें तो वे भविष्य में ४ लोगों (ऑफिस, जोइंट फेमिली) आस पड़ोस के साथ कैसे मिल-जुल कर रह पायेंगे। कैसे संगठन बनाकर समाज/देश की सेवा कर सकेंगे... क्या यह (दो बच्चों के लिए दो टी.वी. या प्रत्येक के शयन कक्ष में अलग-अलग टी.वी. रखना) अनर्थक नहीं है। ऐसा करने से टी.वी. रखना मात्र ही अनर्थक नहीं हुआ। उसके साथ कितना बड़ा अनर्थ और भी हो गया कि बच्चों में एकाकी/अकेलेपन

के संस्कार पड़ गये, संगठन शक्ति (जो कार्यसिद्धि का मूल स्रोत है) के संस्कार समाप्त हो गये । अत: घर में एक या बहुत बड़ी फेमिली है तो ज्यादा से ज्यादा दो टी.वी. रख लें, इससे ज्यादा रखना तो अनावश्यक ही है।

कई लोग घर में ब्लेक एण्ड व्हाइट टीवी के रहते हुए भी रंगीन टीवी खरीदते हैं, जबकि घर में कुल मिलाकर चार सदस्य हैं, हमारा देश तो धर्मप्रधान है। जहाँ पाश्चात्य संस्कृति का बोलबाला है, जहाँ लोग धर्म का नाम भी नहीं समझते हैं वहाँ पर भी यह नियम है कि जब-तक आप अपने घर की पुरानी चीज अलग नहीं कर देते तब तक नई चीज नहीं खरीद सकते हैं। जैसे जब तक टूटी-पुरानी कुर्सी को घर से बाहर नहीं कर देते तब तक नई कुर्सी नहीं खरीद सकते। ऐसा करने पर उनको कुछ धर्म नहीं होगा, क्योंकि उनके यहाँ का नियम ही है लेकिन यदि आप अनर्थक समझ करके पाप/संगृहवृत्ति से बचने के लिए अनर्थक वस्तुएँ नहीं रखते / खरीदते हैं तो आपको थोड़ा सा धर्म/पुण्य तो अवश्य होगा।

मैंने एक लड़के से पूछा-आप लोग जब रंगीन टीवी खरीद लेते हैं तब ब्लेक एण्ड व्हाइट का क्या करते हैं? उसने कहा माताजी ! पुरानी (ब्लेक एण्ड व्हाइट) टीवी ही क्यों ऐसी तो हमारे घर में सैकड़ों चीजें रखी रहती हैं। जैसे- नई मोटर (पानी भरने की) ले ली, नया पंखा खरीद लिया, नया मोबाइल, कूलर आदि नई डिजायन के या बदलते जमाने के अनुसार बदलती वस्तुएँ खरीद लेते हैं तो पुरानी मोटर, पंखा, कूलर, मोबाइल आदि ऐसे ही एक तरफ पड़े रहते हैं, पड़े-पड़े पुराने हो जाते हैं जब तक वे जीर्ण-शीर्ण होकर आधे-अधूरे टूट नहीं जाते तब तक किसी को देने की बातें तो बहुत दूर बेचते तक नहीं हैं, टूटने के बाद मजबूर होकर कबाड़े में बेचने पड़ते हैं। मैंने कहा-पहले ही क्यों नहीं बेच देते अथवा किसी गरीब को भी तो दे सकते हैं, क्या कोई लेने वाला नहीं मिलता है? उसने कहा, ‘‘नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है, लेने वाले तो बहुत मिल जाते हैं, बिक भी जाते हैं लेकिन यह सब करने के लिए हमारा मन तैयार नहीं हो पाता।’’ क्या ऐसा करना, ऐसी वस्तुएँ इकट्ठी किये रखना अनर्थक नहीं है ?

वस्त्राभूषण में

कई लोग बच्चे के या स्वयं के ३-४-५ स्वेटर हैं फिर भी कहीं अच्छी डिजाइन का स्वेटर दिख गया तो और खरीद लाते हैं। कई लड़कियों के तो ७०-८० सूट होते हैं फिर भी और सिलवाती या खरीदती रहती हैं। यदि लड़की की उम्र छोटी है तो हेल्थ, हाइट बढ़ जाने से सब सूट/स्वेटर बेकार हो जाते हैं। यदि बड़ी उम्र की है तो ससुराल जाने पर साड़ी पहननी पड़ती है या डिलीवरी आदि से हेल्थहाइट में अन्तर आ जाता है, आखिर आप सोचें इतने सूटों का क्या होता होगा? वे स्वेटर आदि बड़े होने के बाद पहने नहीं जा सकते हैं। वे सूट/स्वेटर या तो काल की गोद में ही समा जाते हैं अर्थात् रखे-रखे ही जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, या मजबूर होकर किसी को देने पड़ते हैं, क्या यह अनर्थक नहीं है ?

मेरी तो यह सलाह है कि यदि आपके पास पर्याप्त स्वेटर-साड़ी-शर्ट आदि हैं तो आप नये नहीं खरीदे। यदि खरीदने का बहुत मन हो रहा है तो पहले पुराना एक स्वेटर आदि अलग कर दें अथवा खरीद कर घर आते ही एक स्वेटर अवश्य किसी को दे दें। ताकि आपके घर में अनावश्यक सामग्रियों का संगृह भी नहीं हो और पापास्रव से भी बच सकें।

इसी प्रकार कई महिलाएँ बिन्दियों के ४०-५० पेकेट ४०-५० बक्कल, चप्पलें, क्लिप, चूड़ियाँ आदि ढेरों की संख्या में रहते हुए भी नई चीजें खरीदती रहती हैं। कई महिलाओं का कहना रहता है कि जितनी साड़ियाँ हैं उतनी मेचिंग की सब वस्तुएँ आवश्यक हैं। ठीक है, सबका मेचिंग आवश्यक है लेकिन एक ही रंग की ३-४ साड़ियाँ भी होती हैं। एक जोड़ी चप्पल आदि से उनका काम चलाया जा सकता है। फिर इतनी साड़ियों में से एक साड़ी का नम्बर वर्ष में एक-दो बार ही तो आता है। साल में एक-दो बार पहनने पर क्या आपके चप्पल आदि खराब नहीं हो जायेंगे....।

दूसरी बात, मैचिंग की साड़ी-रुमाल चप्पल आदि में कुछ दिन अथवा दो-चार महीने या ज्यादा से ज्यादा १-२ साल तो थोड़ा शौक रहता है लेकिन उसके बाद तो अपने-आप में ही प्रमाद-आलस आने लगता है, सजने में शरम आने लगती है, फिर तो वे सब वस्तुएँ भी अनावश्यक ही लगने लगती हैं।

डिब्बे भरे बक्कलों में से कई बक्कलों को एकबार भी नहीं लगा पाते हैं तब तक उनमें जंग लग जाता है। कई बक्कल उठा-पटक करने अर्थात् सम्हालने-सम्हालने में ही टूट जाते हैं, चटक जाते हैं।

कई महिलाओं की नेलपॉलिश, लिपिस्टिक की डिब्बियाँ रखी-रखी सूख जाती हैं, आखिर एक महिला कितना नेलपॉलिश, लिपिस्टिक लगा सकती है, भले ही वह रोज नेलपॉलिस-लिपिस्टिक लगाए तो भी एक डिब्बी १५-२० दिन चल ही जाती है। वैसे किसी के पास इतना समय ही कहाँ है कि रोज श्रृंगार करने में ही लगा रहे। अधिकतर महिलाओं की तो एक डिब्बी भी पूरी नहीं हो पाती है, सूख ही जाती है तो जो ५-७ या इससे भी ज्यादा शीशियाँ रखती हैं उनकी शीशियों का क्या होता होगा, भगवान जाने? क्या इतनी शीशियाँ अनर्थक नहीं हैं? इसी प्रकार अन्य सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री भी बिगड़ती है। अत: सोच-समझ कर ही इनका संग्रह करना चाहिए।

कई महिलाओं के पास तो ऐसी साड़ियाँ भी रखी रहती हैं जिनको बड़े शौक से खरीद तो लिया है लेकिन आज तक एक बार भी नहीं पहना है या एक-दो बार पहना है। मैं उनसे पूछना चाहती हूँ कि वे इस संग्रह को कब तक सहेजती रहेंगी? आखिर उनके खराब हो जाने पर भी तो उन्हें हटाना ही पड़ेगा। इससे तो अच्छा है अभी किसी को देकर यश तो प्राप्त कर लें।

अभिप्राय यही है कि हम वस्त्राभूषणों का अनावश्यक संग्रह नहीं करें। नया खरीदने से पहले सोच लें कि वह आवश्यक है या नहीं? अथवा पहले वाले को अलग कर दें, फिर नया खरीदें ताकि परिग्रह रूपी पाप से कुछ बच सकें।

औषधि में

कई लोग तो संत-साधुओं तक को झाड़पोला, बादाम का तेल, मोनोडर्म, हिमगंगा तेल आदि की ५-७ शीशियाँ भेंट कर आते हैं। त्यागी-वृती मना करते रहते हैं और वे जबरन उनके बैग अथवा उनके पास/ उनकी वसतिका में रख कर चले आते हैं। देने वाले इतना भी नहीं सोच पाते हैं कि क्या एक झाड़पोला की डिब्बी खतम हो जाने पर इनको कोई दूसरी डिब्बी नहीं दे पायेगा या किसी दूसरे गाँव में झाड़पोला की डिब्बी नहीं मिलेगी, मोनोडर्म नहीं मिलेगा...। क्या ५-७ डिब्बियाँ देना अनर्थक नहीं है ?

इसी प्रकार कई लोग अपने घर में ही विक्स, आयोडेक्स, बॉम आदि की तीन चार शीशियाँ खरीद लाते हैं, वर्षों तक वे शीशियाँ खाली नहीं होती हैं क्योंकि बीमारी तो कभी-कभी ही होती है तो उन दवाइयों का उपयोग भी कभी-कभी ही

होता है। कई लोगों की तो इतनी बुद्धि चलती है कि वे सिर दर्द-पेटदर्द आदि की गोलियाँ भी रखे रहते हैं। उनकी डेट निकल जाने पर भी गोलियाँ रखी रहती हैं, कभी अचानक पेटदर्द हुआ, गोली उठाई और खा ली तो उसका क्या फल होगा, आपने कभी सोचा है ? क्या इस प्रकार की दवाइयाँ रखना अनर्थक नहीं है। ऐसी दवाइयाँ आवश्यक होकर भी अनावश्यक हैं, हमारे लिए लाभदायक होकर भी हानिकारक बन जाती हैं अत: दवाइयाँ रखने, खरीदने तथा देने के पहले विचार करके कार्य करें ताकि भविष्य अच्छा बने।

पुस्तकादि रखने में

कई लोगों के पास १०-१५ डायरियाँ होती हैं, रखते हैं, रखें, रखने में कोई हानि नहीं है। १०-१५ डायरियाँ ज्यादा भी नहीं हैं लेकिन वे सब व्यर्थ की/ अनर्थक तब लगती हैं जब उन डायरियों में से एक भी डायरी पूरी अथवा आधी से ज्यादा नहीं भरी होती है। किसी डायरी के १०-२०, किसी के आगे के ५-१० तथा ५-७ पेज पीछे के भरे रहते हैं, किसी में पहले के ५-७ पेजों पर मुक्तक, बीच में ५-७ पर भजन तथा पीछे के ५-१५ में प्रवचन लिखे रहते हैं। क्या ऐसा करने वाले की १०-१५ डायरियाँ अनर्थक नहीं हैं ? वह पूरी डायरियों का मेटर २-३ डायरियों में भी रख सकता है।

कई लोगों को सत्साहित्य पढ़ने/रखने का शौक होता है। वे जब तब सत् साहित्य खरीद कर लाते हैं। खरीद कर लाते हैं यह तो बहुत अच्छा है, लेकिन कई लोगों के यहाँ पुस्तकें ऐसे रखी रहती हैं जैसे कोई कचरा-कबाड़ा इकट्ठा करके एक तरफ डाल रखा हो, कई घरों की उन पुस्तकों को दीमक लग जाती है, कई पुस्तकों में (बारिस के दिनों में) फफूंद लग जाती है, कई पुस्तकों को चूहे काटते रहते हैं; जो पुस्तकों को नहीं सम्हाल सकता है उसे पुस्तकें खरीदने की अपेक्षा किराये से लाकर या पुस्तकालय से ले करके पढ़ लेना ही ज्यादा लाभदायक है। हाँ, जो पुस्तकों को व्यवस्थित रख सकता है वह खरीदे तो अनर्थक नहीं है लेकिन जो पुस्तकों को ढंग से सम्हाल नहीं सकता है, उसके लिए पुस्तकें रखना तो अनर्थक ही लगता है।

कई लोगों के पास इतने पेन होते हैं कि वे रखे-रखे सूख जाते हैं अर्थात्

उनकी स्याही सूख जाती है लेकिन उनसे लिखने का नम्बर ही नहीं आ पाता है, क्या इतने पेन-पेन्सिल आदि रखना अनर्थक नहीं है ?

इसी प्रकार कई लोग सोने की, चाँदी की, स्फटिक की माला आदि अनेक प्रकार की मालाएँ रखते हैं। इतनी मालाएँ रखने में उनका क्या उद्देश्य है इसको तो मैं नहीं कह सकती लेकिन मुझे तो ऐसा लगता है कि वे उन मालाओं को देख-देखकर ही खुश होते होंगे...। एक दो माला से काम चल ही जाता है तो क्या वे अधिक मालाएँ जिनको उपकरण (उपकार करने वाली) माना जाता है वे ही अपकरण (अपकार) अहित करने वाली नहीं बन जाती हैं ? क्या यह अनर्थक नहीं है?

शो की वस्तुओं में

कई लोगों को 'शोपीस' अर्थात् खेल-खिलौने, गुड्डू, पप्पू, बबलू, बिल्ली, गुलदस्ता, शेर आदि नई-नई वस्तुएँ खरीदने का शौक रहता है, लेकिन खरीदते समय कम-से-कम यह तो ख्याल रखें कि उनके अर्थात् खरीदने वाले के घर पर शो केश भी है या नहीं ? यदि नहीं है तो नई वस्तुएँ खरीद कर वे कहाँ रखेंगे। इतना ध्यान नहीं रखने वालों की अच्छी/मूल्यवान वस्तुएँ भी इधर-उधर रखी रहती हैं, कोई वस्तु सेल्फ पर तो कोई काच की अलमारी में तो कोई कपड़े आदि के बीच में रखी रहती हैं। उनको देख-देखकर विकल्प भी होते हैं पर खरीदे बिना मन भी नहीं मानता है। क्या ऐसे व्यक्ति को वस्तुएँ खरीदना उचित है ? फिर खरीदना ही है तो खरीदे, खरीदकर किसी मित्र, रिश्तेदार आदि को दे दे। लेकिन क्या ऐसा कोई कर सकता है ? अत: कोई भी वस्तु खरीदने के पहले यह तो सोच लें कि इन वस्तुओं को घर में कहाँ रखेंगे, क्या मेरे घर में ऐसा कोई उचित स्थान है जहाँ पर ये सुशोभित हो सकती हैं ?

कई दुकानों पर बैग, पैड, सूटकेस, ग्लास, जग आदि इतने गिफ्ट आइटम आते हैं जो वर्षों तक रखे रहते हैं, पुराने पड़ जाते हैं, गल जाते हैं, टूट-फूट जाते हैं क्योंकि इतनी सारी चीजों का एक छोटे से परिवार में क्या उपयोग हो सकता है। मैंने एक व्यक्ति से पूछा, तुम लोग इतने सारे पैड आदि का क्या करते हो ? उसने कहा कुछ नहीं करते, ऐसे ही घर में पड़े रहते हैं। मैंने कहा-पैडों को सिलवाकर

गरीब बच्चों को दे दो तो उनकी पढ़ाई में काम आ सकते हैं बैग आदि भी दे दो तो उनके कपड़े रखने, स्कूल की पुस्तकें रखने के काम आ सकते हैं। उसने कहा, माताजी ! यह बात तो मेरे दिमाग में ही नहीं आई थी। शायद अधिकतर लोगों की ऐसी ही विचारधारा रहती होगी। इसीलिए घर में चीजें सड़ती रहती हैं। आप थोड़ा सा दिमाग से काम करें ताकि पाप से भी बचें और वस्तुओं का सही उपयोग भी हो सके।

भोग-उपभोग की इन अनावश्यक सामग्रियों को रखने में भी वे सभी हानियाँ होती हैं जो कि घर की अनावश्यक वस्तुएँ रखने में होती हैं और भी अनेक हानियाँ होती ही हैं, उनको अपनी समझ से सोचकर अनावश्यक पापों से बचना ही चाहिए।

खाने-पीने की वस्तुओं में

कई लोग इतना अचार डाल लेते हैं कि नया अचार डाल देने के बाद भी बहुत सारा अचार बचा रहता है। उस समय बच्चों से कहना पड़ता है कि पहले पुराना अचार खतम करो इसके बाद नया खायेंगे। पुराना अचार जब तक खतम होता है तब तक नया अचार पुराना हो जाता है। लड्डू आदि में भी ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं, थोड़ा सा प्रमाद होने पर उनमें फफूंद आदि भी लग जाती है। इसी प्रकार सब्जी आदि के खरीदने में भी हो जाता है। एक दिन एक लड़की ने बताया, माताजी ! पापा इतनी लौकी लाकर रख देते हैं कि उनको देख-देखकर ऊब जाते हैं। घबराहट होने लगती है। ऐसे ही मिर्ची-नीबू आदि तो टोकरी में रखे-रखे ही सूख जाते हैं जो कि हमेशा और सबके खाने की सामान्य वस्तु हैं। जबकि ये चीजें सामान्य रूप से हर जगह, जब चाहो, मिल जाती हैं फिर इतनी सारी एक साथ खरीद लाना और कई दिनों तक उनको सम्हालने का श्रम करते रहना क्या अनर्थक नहीं है ?

उपसंहार

संसार में अनन्तानन्त भोग सामग्रियाँ हैं। उन सबको न आज तक कोई भोग पाया है और न ही भोग पायेगा। और यूँ देखा जाय तो संसार का कोई पदार्थ ऐसा नहीं बचा जो प्रत्येक जीव ने अनन्त-अनन्त बार नहीं भोगा हो क्योंकि प्रत्येक जीव ने अनन्त शरीर धारण किये हैं; उन शरीरों के माध्यम से सब पुद्गल को

भोगा है। लेकिन वह सब हमें याद नहीं है। हमारे छोटे से स्मृति ज्ञान में इतना याद रह भी कैसे सकता है ? यही कारण है कि हम पुन: उन्हीं-उन्हीं भोगसामग्रियों को इकट्ठा करना चाहते हैं, भोगना चाहते हैं। वास्तव में, जितनी हम भोगने की कल्पनाएँ करते हैं उतनी वस्तुएँ इकट्ठी नहीं कर पाते हैं और जितनी इकट्ठी कर लेते हैं उतनी भोग नहीं पाते हैं। बस, उपर्युक्त प्रसंग में यही कहा गया है कि हम उतनी ही वस्तुएँ इकट्ठी करें जितने से हमारा कार्य चल जावे।

वनस्पति सम्बन्धी

संसार में जितनी भी खाने की चीजें हैं वे सब वनस्पति से ही उत्पन्न होती हैं। गेहूँ, मूँग, चना, मटर आदि सभी वस्तुएँ वनस्पति ही सूखकर बनती हैं। गेहूँ, मूँग आदि से वनस्पति उत्पन्न होती है। गेहूँ आदि वनस्पतियाँ बोने पर उत्पन्न होती हैं अर्थात् विशेष रूप से खेतों में उत्पन्न होती हैं लेकिन कुछ वनस्पतियाँ बिना बीज के ही उत्पन्न होती हैं इसलिए वे जहाँ कहीं मिट्टी पानी आदि का संयोग मिलने पर उत्पन्न हो जाती हैं। यही कारण है कि हमारे चलने-फिरने आदि क्रियाओं में उन वनस्पतियों की हिंसा प्रमाद के कारण हो जाती है या हम इनकी हिंसा प्रमाद के वश में होकर कर देते हैं अथवा इनकी हिंसा करते समय हमें यह भान ही नहीं रहता है कि ऐसा करने में कुछ हिंसा भी होती है या इन छोटे-छोटे अंकुरों में भी जीव होते हैं, जीव हो सकते हैं। गृहस्थ में रहते हुए व्यक्ति इन जीवों की हिंसा से पूर्ण रूप से नहीं बच सकता। फिर भी इन जीवों की अनावश्यक हिंसा से तो बच ही सकता है। अपनी शक्ति के अनुसार कुछ-कुछ जीवों की रक्षा तो कर ही सकता है। हम कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे जीवों की हिंसा करते हैं एवं कैसे बच सकते हैं उनका कुछ विचार यहाँ किया जाता है- (१) दातुन में (२) फूल चुनते समय (३) फंक्शन आदि में (४) औषधि में।

दातुन में

कई लोग हिंसा से बचने के लिए अथवा बाजार के अशुद्ध मंजन से बचने के लिए तथा अपने दाँतों को मजबूत बनाने के लिए नीम, बबूल, आम, बीही आदि की टहनी से दातुन करते हैं। उनका उद्देश्य सही है। ऐसा करने से वे निश्चित रूप से हिंसा से बच जाते हैं और उनके दाँत भी मजबूत रहते हैं लेकिन थोड़े से अविवेक के कारण वे जितनी हिंसा से बचते हैं उससे ज्यादा हिंसा कर लेते हैं।

वे जहाँ एक बिलस्त नीम आदि की टहनी से काम चल जाता है वहाँ वे नीम की बड़ी डाली जिससे ८-१० व्यक्ति दातुन कर सकते हैं, तोड़ लाते हैं। उसमें से एक बिलस्त के टुकड़े से मंजन करते हैं, शेष को फेंक देते हैं। भूल से या अनजान में तोड़ भी लाये तो उसमें से छोटे-छोटे टुकड़े निकालकर फ्रिज अथवा किसी ठंड़े स्थान पर रखकर ७-८ दिन तक दातुन कर लेते तो फिर भी ठीक था लेकिन उसको तो फेंक देना और दूसरे दिन फिर से नयी टहनी तोड़कर लाना क्या अनर्थक/अनावश्यक नहीं है ?

फूल चुनते समय

कई लोग जब फूल लेने जाते हैं तो वे फूल तोड़ते समय यह भी ख्याल नहीं रखते हैं कि हमें कितने फूलों की आवश्यकता है और हम कितने फूल तोड़े जा रहे हैं। कई लोग तो वृक्ष के नीचे ताजा-सुन्दर खिले, तत्काल थोड़ी देर पहले ही गिरे हुए फूलों को छोड़कर वृक्ष से फूल तोड़ते हैं जबकि वृक्ष के नीचे गिरे फूलों से भी काम चल सकता था, काम चला सकते थे लेकिन उन्हें फूल तोड़ने का शौक आता है। कोई-कोई यह कहते हैं कि हम तो साफ शुद्ध पवित्र फूल काम में लेते हैं, ऐसा कहने वालों ने बाजार से फूल खरीदते समय कभी फूल वाले से यह पूछा है कि वह फूल नीचे गिरे हुए लाया है या तोड़ करके। हो सकता है कि वह नीचे गिरे हुए लाया हो, एक-एक फूल के आश्रित कितने जीव होते हैं, वे सब जीव अपना आश्रय समाप्त हो जाने से मरण को प्राप्त हो जाते हैं।

फंक्शन में

दीपावली, रक्षाबन्धन, शादी, गृह-प्रवेश आदि के फंक्शन में आम के पत्तों की बन्दनवार बनाते हैं, लोटे में आम के पत्ते रखकर कलश तैयार करते हैं, शादी के मण्डप में भी आम के पत्तों की आवश्यकता पड़ती है। उस समय आम के वृक्ष की बड़ी सी शाखा तोड़कर ले आते हैं। उसमें से कुछ पत्ते काम में आते हैं, शेष पत्ते पड़े-पड़े सूखते रहते हैं। आवश्यक पत्तों को काम में लेकर शेष पत्तों को गाय-भैंस को खिला सकते थे लेकिन गाय-भैंस आम के पत्ते खाती भी तो नहीं हैं जिससे उसका थोड़ा उपयोग हो जाता। क्या इतने पत्ते तोड़कर लाना अनावश्यक नहीं है ?

कई लोग प्रात: घूमने के लिए जाते हैं, जहाँ भी वृक्ष-पौधा, झाड़ी मिली दो-चार पत्ते तोड़े बिना उनके पास से निकलते ही नहीं है, क्या इस प्रकार पत्ते तोड़ना अनावश्यक नहीं है?

कई बार यदि किसी के खेत में पहुँच गये तो जामफल, नीबू, बेर, टमाटर आदि तोड़ते हैं, जितने खाते हैं उसमें तो कुछ नहीं लेकिन वे खाते कम हैं फेंकते ज्यादा हैं, क्या यह अनर्थक नहीं है ?

कई लोग जब पिकनिक मनाने जाते हैं तो वहाँ पर पत्तों पर भोजन रखकर खाने का मन होता है। वे इतने पत्ते तोड़कर ले आते हैं कि बीस आदमी भोजन कर लें जबकि उनके यहाँ भोजन करने वाले मात्र ५-७ लोग होते हैं। क्या इतने पत्ते तोड़ लाना अनर्थक नहीं है?

औषधि में

कभी-कभी औषधि के लिए तुलसी, मरुआ, बबूल, नीम आदि के पत्तों की आवश्यकता पड़ती है। कईलोग ५-७ पत्तों के स्थान पर १५-२० पत्ते तोड़ लाते हैं। ५-७ पत्ते दवाई के काम में आते हैं, शेष पत्ते इधर-उधर हो जाते हैं, क्या ऐसा करने से पाप का बन्ध नहीं होगा? क्या ऐसा नहीं करने से वह दवाई दूसरे के काम नहीं आ जाती? उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं हो जाता, क्या ऐसे पत्ते तोड़ लाना अनर्थक नहीं है?

कभी काँटा चुभ जाने पर सिकाई के लिए, कभी लेप लगाने के लिए घुटने आदि पर बाँधने के लिए बड़, पीपल, आक आदि के पत्तों की आवश्यकता पड़ती है। जहाँ आक के एक-दो पत्तों में इतना दूध निकल आता है कि काँटा निकल जावे, ४-८ पत्तों में अच्छी तरह सिकाई हो जाती है, १०-१२ पत्तों में लेप तैयार हो जाता है लेकिन कई लोग आक के एक पत्ते के स्थान पर ढेर सारे पत्ते तोड़ लाते हैं; कई तो इमली, बड़ आदि की तो बड़ी डाली ही तोड़ लाते हैं। क्या इस प्रकार पत्ते तोड़ना/डालियाँ तोड़ना अनर्थक नहीं है?

कई लोग साधु की सेवा करने में तत्पर रहते हैं, कभी साधु को गर्मी बढ़ जाने पर हाथ-पैर में रगड़ने के लिए लौकी के दो-तीन टुकड़ों की आवश्यकता पड़ती है। वे २-३ टुकड़ों के स्थान पर आधी-पौन लौकी के टुकड़े बनाकर ले आते हैं, दो-तीन टुकड़ों का उपयोग होता है। शेष लौकी ऐसे ही रखे-रखे सूख जाती है, क्या यह अनावश्यक नहीं है?

इसी प्रकार हम कितने ही स्थानों पर वनस्पति का दुरुपयोग करते हैं, अनावश्यक फेंक देते हैं, इसका हमें कितना पाप लगता होगा। क्या हम थोड़ा सा प्रमाद छोड़कर उन पापों से नहीं बच सकते हैं ? हम पापों से बचें और अपना हित करें।

उपसंहार

संसार में सबसे अधिक वनस्पतिकायिक जीव हैं। थोड़ा सा मिट्टी-पानी का संयोग मिलते ही इन जीवों का जहाँ कहीं उत्पाद हो जाता है। कभी-कभी तो रोटी, लड्डू, इधर-उधर डले हुए नीबू, आँवला, सब्जी आदि भोजन सामग्रियों में फफूंदी के रूप में ये वनस्पति जीव उत्पन्न हो जाते हैं। मेरे अनुमान से संसार में सबसे ज्यादा हिंसा इन वनस्पतिकायिक जीवों की ही होती है। बिना बोये ही रास्ते में, पगडंडियों में, छतों पर, मंदिर के शिखरों तक में ये जीव उत्पन्न हो जाते हैं। वर्षा ऋतु में तो कहीं अंकुरे, कहीं दूब, कहीं ऐसी वनस्पतियाँ जिनको गाय-भैंस आदि पशु नहीं खाते हैं वे उत्पन्न हो जाती हैं तो पैरों से कुचल-कुचल कर मरण को प्राप्त हो जाते हैं। इन सब वनस्पतियों का रक्षण हम कैसे करें अथवा हम उनकी अनर्थक हिंसा से कैसे बचें। इस सबका यहाँ संक्षेप में वर्णन किया गया है। इन अनर्थक पापों से बचें एवं जीवन सार्थक करें।

अंगोपांगों के संचालन में

अकारण अंगुलियाँ चटकाना, पंजे लड़ाना, पैरों को हिलाना, अनुचित संचालन अर्थात् बिना प्रयोजन जैसे-तैसे हिलाते रहने से प्राण-शक्ति का ह्रास अर्थात् आयु कम होती है, मस्तिष्क तथा स्नायुमण्डल पर बुरा असर होता है तथा स्मरण शक्ति कम होती है।

ऐसा नहीं करने से चित्त की स्थिरता बढ़ती है जिससे सभी कार्य सहज सिद्ध हो जाते हैं। एक बार एक चिकित्सक ने इसका प्रयोग किया- ऐसे विद्यार्थियों पर, जो बहुत तीक्ष्ण बुद्धि थे, जिन्हें एक बार पढ़ते ही पाठ याद हो जाता था, उन्हें अंगुलियाँ चटकाने, पंजा लड़ाने तथा हाथों का अनुचित प्रयोग करने की आदत डाल दी गई। परिणामस्वरूप एक मास के अनन्तर ही उनकी बुद्धि, स्मरण-शक्ति

और मानसिक क्षमता कम हो गई अर्थात् आई क्यू स्तर गिर गया किन्तु जब उन्हें ज्ञानमुद्रा (तर्जनी एवं अंगूठे को मिलाना) का निरन्तर अभ्यास कराया गया तथा पंजे लड़ाना आदि बंद करवाया गया, उनकी बौद्धिक क्षमता पूर्ववत् हो गई।

इसी प्रकार कई लोग अंगुलियाँ मरोड़ते रहते हैं, चुटकियाँ बजाते रहते हैं, अंगुलियों को यद्वा-तद्वा घुमाते रहते हैं। कई लोग बैठे-बैठे घुटने हिलाते रहते हैं, कई लोग बैठे-बैठे हिलते रहते हैं, हिले बिना उनका माला-फेरने, पुस्तकें पढ़ने, रोटी खाने आदि का काम ही पूरा नहीं चलता। कोई तो किसी से बात करते समय तक भी यदि बैठे हैं तो हिलते रहते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि एक-बार अंगुली हिलाने मात्र में हजारों कैलोरियाँ समाप्त होती हैं तो इतना हिलने में कितनी कैलोरियाँ नष्ट होती होंगी। उन कैलोरियों को प्राप्त करने के लिए हमें भोजन की आवश्यकता पड़ती है। इन्हीं अंगुलियों को यदि सही ढंग से समय पर हिलाया-चलाया जाय तो व्यायाम कहलाता है उसमें शरीर के ऊपर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। कई लोग पैर पटक-पटक कर चलते हैं, कई लोग कुर्सी-चबूतरा, तख्त आदि पर बैठते हैं तो पैर अवश्य हिलाते हैं, पुराने जमाने में बड़े-बूढ़े लोग बच्चों को इस प्रकार चलने पर टोकते थे, पैर हिलाने को अशुभ मानते थे। इसका अर्थ ही यह निकलता है कि वे इन कार्यों को अनावश्यक मानते थे, अनावश्यक कहने पर बच्चे नहीं मानते हैं इसलिए तो वे ऐसे कार्य को अशुभ बताकर करने के लिए मना करते होंगे। वर्तमान में इनको असभ्यता माना जाता है। ये गँवार लोगों के कार्य माने जाते हैं। मैनर्स वाले लोग इस प्रकार के कार्य नहीं करते हैं। आप सोचें, हम कितना सही कर रहे हैं।

पेन-पेन्सिल हाथ में हो तो

कई सभ्य लोग भी यदि पेन-पेन्सिल हाथ में हो तो उसका ढ़क्कन बंद करेंगे, खोलेंगे। यदि चटकाने वाला पेन/पेन्सिल है तो उसका स्विच (चटकनी) चटकाते रहेंगे। यदि रबर है तो उसको पैकिट में खिसकाते रहते हैं, निकालते रहते हैं। यदि पास में बॉक्स/कम्पास आदि रखा हो तो उसे ही बार-बार बंद करेंगे, खोलेंगे। यदि माला-हार आदि रखे हैं तो उसके मोती गिनते रहेंगे, उसको इधर-उधर से खींचते रहेंगे, उसको घुमाते रहेंगे। कभी-कभी तो खींचते-खींचते माला डेढ़ गुणी हो जाती है। बार-बार खींचने से धागा कमजोर हो जाता है, फलत: माला जल्दी टूट जाती है। क्या ऐसा करना उचित है?

कोई-कोई तो हाथ में पेन आ जाए तो उसी से अपने हाथ में मेहँदी रचा लेंगे अर्थात् मेहँदी की डिजाइन डाल लेंगे। कोई-कोई तो पुस्तक में या कॉपी में जहाँ-कहीं जो कुछ भी बनाते रहेंगे, लिखते रहेंगे उस समय तो भान ही नहीं रहता है कि हम क्या कर रहे हैं लेकिन जब बाद में पुस्तक देखते हैं तो लगता है कि शायद इससे साफ पुस्तक तो पहली दूसरी क्लास के बच्चों की होती होगी। कई बच्चे तो अपनी होमवर्क की कॉपी में भी ऐसा कर लेते हैं और कई अल्प बुद्धि लोग तो दूसरे की कॉपी पुस्तक में भी ऐसा करने में नहीं चूकते हैं। फलत: डाँट ही खानी पड़ती है तथा बार-बार ऐसा करने पर कभी-कभी मित्रता भी टूट जाती है।

कई घरों में तो दीवारों पर ही पेन-पेन्सिल की लकीरें, छोटे-मोटे फूल बने मिल जायेंगे, अच्छी-सुन्दर कारीगरी की हुई मिल जायेगी, लेकिन वह इसलिए अच्छी नहीं लगती है कि वह सही स्थान पर नहीं की गई होती है। आप सोचें क्या यह सब अनर्थक नहीं है? क्या इन कार्यों में हमारा अमूल्य समय नष्ट नहीं होता है? क्या इन कार्यों से हमारे पेन-पैन्सिल खराब नहीं होते, स्याही व्यर्थ में ज्यादा खराब नहीं होती?

बैठे-बैठे

कई लोग जब दरी/आसन/चटाई/जाजम पर बैठते हैं तो बैठे-बैठे उसमें से तार निकालते रहते हैं। एक तार निकाल देने से उसके पास वाले तारों का सपोर्ट समाप्त हो जाने से धीरे-धीरे अनेक तार निकलकर छेद हो जाता है। फलत: नयी दरी भी फटने लगती है। कोई तो अपने ही रूमाल, साड़ी, टॉवेल, शर्ट आदि में से तार निकालना प्रारम्भ कर देते हैं। कोई हाथ में कागज का एक टुकड़ा आ जावे तो उसके ५०-६० या सैकड़ों टुकड़े कर देते हैं। क्या यह अनर्थक नहीं है? क्या हमारे एक तार निकालने से बिछाये वस्त्रों का नुकसान नहीं होता है, क्या कागज के टुकड़े को फाड़ने की आदत पड़ने पर हम काम के कागज नहीं फाड़ सकते हैं, यदि कभी काम का कागज फट गया तो कितना नुकसान हो जायेगा? आप स्वयं सोचें। फिर कागज की बात तो बहुत दूर, एक महिला की ऐसी ही आदत थी, उसने तो बैठे-बैठे दस हजार के नोट ही फाड़ दिये। उसको पता ही नहीं था

कि उसने दस हजार के नोट के टुकड़े कर दिये हैं। जब पास में बैठी उसकी भाभी ने बताया तब समझ में आया कि मैंने नोट फाड़ दिये हैं।

कई लोग बैठे-बैठे जमीन खोदते रहते हैं, जहाँ दो पत्थरों के जोड़ने का स्थान होता है वहाँ से एक छोटा सा टुकड़ा निकल गया तो वहाँ की दरार बढ़ती जाती है, दरार में पानी भरता रहता है। वहाँ पानी रुक जाने से काई आने लगती है। उस काई को साफ करने में महापाप लगता है, क्या ऐसा करना आवश्यक है। नहीं, कदापि नहीं।

इसी प्रकार कई लोग बैठे-बैठे चलती हुई चीटियों का रास्ता रोकते हैं, कई लोग भिनभिनाते मक्खी-मच्छरों को पकड़ने की कोशिश करते रहते हैं, आदि-आदि अनेक प्रकार के अप्रयोजनभूत कार्य क्या अनर्थक नहीं हैं ? ऐसे अनर्थक कार्यों से अवश्य ही बचना चाहिए।

नाखून खाते हैं

कई लोग अपने हाथों के नाखूनों को ही दाँतों से कुतरते रहते हैं। इस प्रकार नाखून कुतरने से नाखून के छोटे-छोटे टुकड़े शरीर में पहुँचकर कितना नुकसान करते होंगे? दूसरी बात, नाखून में भरा मैल गन्दगी/बैक्टिरिया शरीर में जाकर कितनी बीमारियाँ उत्पन्न करते होंगे, यह आप स्वयं जानते ही होंगे। डॉक्टरों का कहना है कि भोजन करने के पहले हाथों को अच्छी तरह धोना चाहिए क्योंकि हाथों में बाहरी वातावरण के कई बैक्टिरिया लगे रहते हैं वे भोजन के साथ शरीर में प्रवेश कर बड़ी-बड़ी बीमारियाँ भी उत्पन्न कर सकते हैं। पुराने जमाने में दूर से कोई आया हो तो उसे बिना हाथ-पैर धोए घर में प्रवेश नहीं मिलता था तथा बिना कपड़े बदले रसोईघर में नहीं आने देते थे, भोजन नहीं करने देते थे। इसे ही सोला के नाम से घोषित किया गया था जिसको आज की नई पीढ़ी ढोंग कहती है। तीसरी बात, नाखून भी एक हड्डी है। उसको मुँह में लेने से अथवा उनके मुँह में जाने पर मांसाहार का दोष भी निश्चित रूप से लगता है। क्या ऐसा करना उचित है ?

बजाने लगते हैं

कई लोग पाटा, टेबल, थाली, ढक्कन, डिब्बा जो भी चीज हाथ में आवे उसी को ढ़ोलक समझकर बजाना शुरू कर देते हैं। ऐसी आदत होने से कभी कोई हल्की-फुल्की चीज है तो फूट/टूट ही जाती है, कभी तो बेहोशी में वे पुस्तकों/शास्त्रों, नोट्स की कॉपी को भी बजा देते हैं। सोचो, धर्मग्रन्थ बजा लेने पर उसके अविनय का उनको कितना पाप लगता होगा। पुस्तक कॉपी आदि को इस प्रकार बजा लेने से विद्या कैसे आ सकती है ? एक लड़की की ऐसी ही आदत थी। उसके हाथ में जो चीज आती वह उसी को ढोलक जैसा बजाना शुरू कर देती। एक दिन वह अपनी गुरु को राख देने के लिए एक प्लेट में राख लेकर जा रही थी। उसने अपनी आदत के अनुसार राख की प्लेट को ही बजाना शुरू कर दिया। फलत: प्लेट में से उड़कर राख उसकी गुरु (आर्यिका माताजी) की आँखों में गिर गई। एक खोटी आदत के कारण उसके हाथ से कितना बड़ा पाप हो गया। जहाँ गुरु की सेवा-शुश्रूषा करना चाहिए वहाँ उसने अनर्थक कार्य करके गुरु को तकलीफ पैदा कर दी, क्या यह अच्छा किया? क्या ऐसा करना चाहिए ?

चलते-चलते

कई लोग रास्ते में चलते-चलते जिस किसी चीज को ठोकर मार देते हैं। शारीरिक बल के मद में पत्थर जैसी भारी चीज को भी लात मार कर बहुत दूर तक लुढ़का देते हैं वे यह नहीं सोचते हैं कि यह पत्थर यहाँ से कहाँ तक लुढ़कता हुआ जायेगा। यह जहाँ तक लुढ़केगा क्या वहाँ तक के छोटे-छोटे जीव मरण को प्राप्त नहीं होंगे ? यदि उनका उद्देश्य पत्थर को एक तरफ करके लोगों को उसकी ठोकर से बचाने का है तो क्या उन्हें छोटे-छोटे जीवों की रक्षा नहीं करनी चाहिए। यदि उन्हें परोपकार करना है तो पत्थर को उठा कर धीरे से भी एक तरफ रखा जा सकता है। इसमें दोनों कार्य सिद्ध होंगे। यदि वह पत्थर जाकर किसी को लग गया तो उसको वेदना भी होगी और झगड़ा भी पैदा हो सकता है।

कई लोग चलते-चलते अनावश्यक ही सड़क पर पड़े हुए जेलिटिन कागज (कार्टून) का टुकड़ा, कपड़ा, पोलिथिन की थैली आदि में लात मार देते हैं, उसमें भी ऐसी ही हिंसा होगी और यदि कभी उसमें कोई विषैला (साँप-बिच्छू) जीव बैठा हो तो वह काट भी सकता है और लात से मर भी सकता है। एक व्यक्ति एक दिन प्रात: काल लगभग ५ बजे लघुशंका करने के लिए घर से बाहर गया। लौटते समय रास्ते में एक जेलिटिन पड़ी थी। उसने जेलिटिन को लात मार दी। लात मारते ही उस जेलिटिन में बैठे हुए साँप ने उसको काट लिया। ५-७ घंटे

में वह मरण को प्राप्त हो गया। हम सोचें, उस जेलिटिन को लात मारने की क्या आवश्यकता थी। साँप बड़ा था सो दिख गया। उसमें छोटे-छोटे जीव तो कितने होंगे, क्या वे आपकी लात से नहीं मरेंगे ? दूसरी बात उस कागज आदि में यदि सुई, काच का टुकड़ा, तीखी नोक वाला पत्थर आदि हो तो उनकेचुभने से अंगूठे-अंगुली, पैर के तलवे आदि में खून भी आ सकता है।

ऐसी आदत होने से कभी मंत्रित नीबू आदि को ठोकर मार दी तो कोई दूसरा प्रभाव भी हो सकता है। कभी केले के छिलके आदि चिकनी चीज में यदि अच्छे से ठोकर नहीं मार पाये तो फिसलकर गिर भी सकते हैं। ठोकर मारने के चक्कर में यदि वाहन आदि का ध्यान नहीं रख पाये तो दुर्घटना भी हो सकती है। आदत से मजबूर आपने यदि गोबर, कुत्ते के मल या बच्चे आदि के मल में ही ठोकर मार दी तो कैसा लगेगा। इन सब बातों को सोचने के बाद भी क्या ठोकर मारना अनावश्यक नहीं लगता है ?

उपसंहार

संसार में अनन्त जीव हैं। उनमें से असंख्यात जीव मन वाले होते हैं उन्हें ही संज्ञी कहते हैं। ये संज्ञी जीव चारों गतियों में होते हैं। **देवगति** में मानसिक अनर्थदण्ड विशेष रूप से हो सकता है /होता है क्योंकि उन्हें भोग की सामग्रियाँ रखना, सम्हालना, खरीदना, धोना-सुखाना आदि कुछ भी कार्य नहीं करने पड़ते हैं। **नरक गति** में तो भोगसामग्रियाँ हैं ही नहीं, वहाँ चौबीस घंटे वेदना में झुलसते हुए भी कदाचित् मानसिक अनर्थदण्ड़ कर लेते होंगे। क्योंकि वे भी दूसरों को दुख देने के विचार ही करते रहते हैं । कभी कायिक एवं वाचिक अनर्थदण्ड भी करते ही होंगे तभी तो उन्हें परस्पर में दुःख देने वाला कहा गया है। **तिर्यञ्च गति** में अज्ञान की प्रधानता है। उनके आवश्यक-अनावश्यक को हम प्रत्यक्ष ही देख सकते हैं। वैसे तिर्यञ्च कितनी भी घास रखी हो कल और परसों के लिए वह उसे इकट्ठा करके नहीं रखता। फिर भी मूल बात यह है कि अधिकांशत: तिर्यञ्च जीवों में आवश्यक-अनावश्यक के भेद को समझने की क्षमता ही नहीं है। देव-नारकियों में उपदेश गृहण करने की क्षमता होने पर भी उनमें संयम का अभाव होने से उन्हें उपदेश देने से कोई लाभ नहीं है। एक मात्र **मनुष्य गति** है जिसको उपदेश भी दिया जा सकता है और वह उपदेश गृहण भी कर सकता है। मनुष्य ही सबसे ज्यादा भोगों की सामग्रियाँ इकट्ठी करता है, नहाता है, कपड़े धोता है, खरीदता है, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति का उपयोग करता है, बोलता है, चलता है, खेलता है, खाता है, पंचेन्द्रिय के विषयों का भोग करता है, धन कमाता है, उसका उपयोग-दुरुपयोग तथा सदुपयोग भी करता है। इन्हीं सब कार्यों में यह कभी आवश्यक करता है तो कभी अनावश्यक

आर्यिका श्री के अमृत वचन

1. वस्तु का कोई मूल्य नहीं है वरन् उसकी आवश्यकता या उपयोगिता का मूल्य है।

2. हमारे कार्य की सिद्धि हमारी अपनी भावनाओं से होती है। हमने जिस भावना से पूजन, वंदन, नमस्कार किया है, वही भावना फलीभूत होती है।

3. मंदिर जाना, पूजन करना, पाठ करना, जप-तप-ध्यान ये सभी क्रियायें अहिंसा के बिना नकली नोट के समान हैं।

4. कषाय की एक कणिका भी सैंकड़ों वर्षों के तप-त्याग-संयम-साधना को क्षण भर में समाप्त कर देती है।

5. जो गृहस्थ समय पर षट् आवश्यकों का पालन करता है, उसके घर में कभी आपत्तियाँ नहीं आती हैं।

6. जिस दिन इस संसार में एक - दूसरे के प्रति विश्वास समाप्त हो जायेगा, उसी दिन से यह संसार मात्र क्लेश, लड़ाई और दुःखों का घर बन जायेगा, कोई भी पलभर शांति से नहीं बैठ पायेगा।

7. पुण्य प्रवृत्तियाँ बढ़ने के बाद भी पापों से निवृत्त नहीं हुआ तो वह वैरागी नहीं है।

8. जिस घर में वृद्धों का सम्मान होता है, वह घर कभी बिखर नहीं सकता है। न ही उस घर में कभी आर्थिक, नैतिक पतन हो सकता है और न ही उस घर को कभी कोई लूट सकता है।

9. किसी भी वस्तु को लाकर रखना अनावश्यक है और लाते ही उसका उपयोग कर लेना आवश्यक है।